संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धयोग

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का
प्रतिपादक मासिक

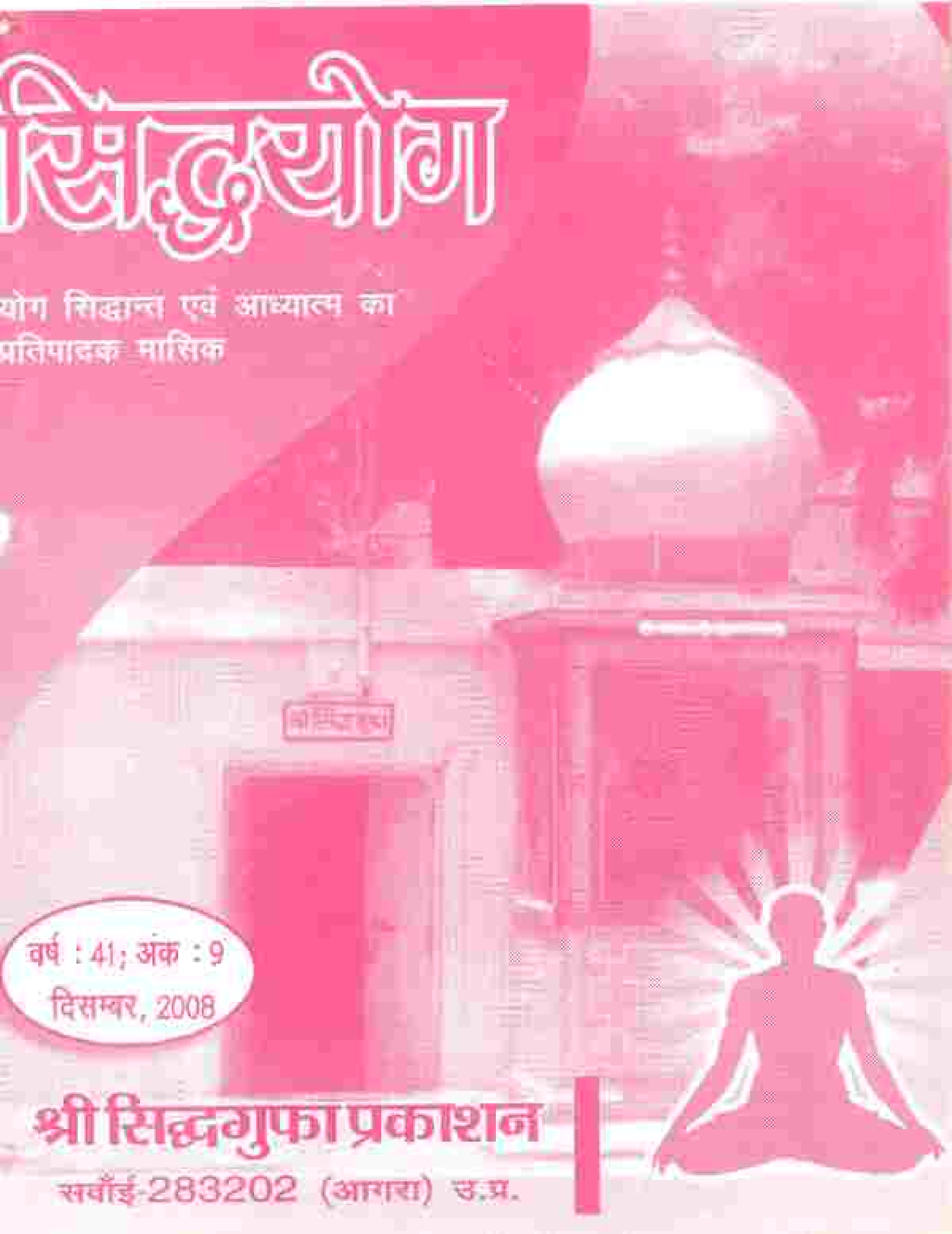

वर्ष : 41; अंक : 9
दिसम्बर, 2008

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृतकण

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः।
यद् यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते।।

(श्वे. 5/10)

जीवात्मा वास्तव में न तो स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक ही है। यह जब जिस शरीर को धारण करता है, उस समय उससे संयुक्त होकर वैसा ही बन जाता है। जो जीवात्मा आज स्त्री है, वही दूसरे जन्म में पुरुष हो सकता है, जो पुरुष है, वह स्त्री हो सकता है। भाव यह है कि ये स्त्री, पुरुष और नपुंसक आदि भेद शरीर को लेकर हैं, जीवात्मा सर्वथा शुद्ध है, सभी उपाधियों से रहित।

●●●

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यो वेद निहितं गुहायां परमे
व्योमन्। सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति।

(तैत्तिरीयोपनिषद्/ब्रह्मानन्द वल्ली/1)

ब्रह्म सत्य, ज्ञानस्वरूप और अनन्त है। जो मनुष्य परम विशुद्ध आकाश में रहते हुए भी प्राणियों के हृदय रूप गुफा में छिपे हुए उस ब्रह्म को जानता है, वह उस विज्ञान स्वरूप ब्रह्म के साथ समस्त भोगों का अनुभव करता है।

●●●

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्।।

(कठोपनिषद् 1/16)

अविनाशी प्रणव—ओंकार—ही तो एक अक्षर है जो ब्रह्म है और यह अक्षर ही परब्रह्म है। इसलिए इसी अक्षर को जानकर जो जिसको चाहता है उसको वही मिल जाता है।

●●●

प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितम्।
मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि न इति।।

(प्रश्नोपनिषद् प्रश्न 2/13)

यह प्रत्यक्ष दीखने वाला जगत और जो कुछ स्वर्ग लोक में है वह सब—का—सब प्राण के अधीन है। हे प्राण! जैसे माता अपने पुत्रों की रक्षा करती है, उसी प्रकार तू हमारी रक्षा कर तथा हमें श्री और बुद्धि प्रदान कर।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

वर्ष : 41 अंक : 9

य एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगाद्
वर्णाननेकान् निहितार्थो दधाति।
वि चैति चान्ते विश्वमादौ स देवः
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु।।
(श्वेताश्वतरोपनिषद् 4/1)

जो रंग, रूप आदि से रहित होकर भी छिपे हुए प्रयोजन वाला होने के कारण विविध शक्तियों के सम्बन्ध से सृष्टि के आदि में अनेक, रूप-रंग धारण कर लेता है तथा अन्त में यह सम्पूर्ण विश्व जिसमें विलीन भी हो जाता है वह परमदेव परमात्मा अद्वितीय है। वह हम लोगों को शुभ बुद्धि से संयुक्त करे।

दिसम्बर 2008

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY
Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 7
3. निवेदन –मोहन स्वरुप योगी 9
4. आत्मचिन्तन –डॉ. ऋषिराम शर्मा 10
5. महिमानं सवाई वाग्न: वर्णने क: क्षम: सुधी:–द्वारका प्रसाद शर्मा 16
6. सद्गुरु कृपालीला –जगदीश राय बसल 19
7. श्री प्रभु चरणों में समर्पित –राजेश कुमार सिंह 23
8. यौगिक प्रश्नोत्तरी –आचार्य पूर्णचन्द 24
9. स्वर्ं योगी हि परमौषधि –डॉ. जे.पी. शर्मा 27
10. ी मद्भागवत् महात्म्य –राजेश कुमार श्रीवास्तव 34
11. आत्मा का स्वरूप –डा. जे.एन. राय 38
12. वरेण्य–जीवन –सुखबीर आर्य 40

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 130.00
द्विवार्षिक	: रु. 250.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

विशेष लेख

सिद्धियाँ उपसर्ग कहाँ?

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

योगदर्शन के कैवल्यपाद के प्रथम सूत्र में भगवान पतंजलिदेव ने-

''जन्मौषधि मन्त्रतप: समाधिजा: सिद्धय:'' कह करके सिद्धियों के पाँच प्रकार बतलाये हैं। उनमें से प्रथम जन्म से होने वाली सिद्धियाँ हैं। जैसे किसी मनुष्य ने तप और स्वाध्याय के फलस्वरूप उत्तम कुल में मनुष्य शरीर ग्रहण किया, उसको जैसा भी दिव्य या अदिव्य शरीर प्राप्त हुआ वह प्राक्तन कर्म विपाक के अनुसार ही उसे वैसा ही प्राप्त हुआ है। यह जन्मजा सिद्धि कहलाती है। अपने जन्म के साथ ही उसको यह सिद्धि प्राप्त हुई और मरणपर्यन्त बनी रहेगी। दूसरे इस उदाहरण को इस प्रकार समझ लेना चाहिए-पक्षियों का आकाश गमन करना उनकी जन्मजा स्वाभाविक सिद्धि है। इसी प्रकार से जल में ऊँची और नीची गति लेना मछली को जन्म से स्वाभाविक सिद्धि है। यही जन्मजा सिद्धि कहलाती है।

इसके बाद दूसरी सिद्धि जिसका भगवान पतंजलिदेव ने औषधियों से होने वाली सिद्धि कहकर जिक्र किया है। दिव्य औषधियाँ सेवन करने से मनुष्य के शरीर में तत्काल ही एक नया परिणाम पैदा हो जाता है। कितनी ही ऐसी औषधियाँ हैं जिनका सेवन करने से मनुष्य कायाकल्प तक कर डालते हैं। यह कायाकल्प औषधियों की शक्ति से प्राप्त हुआ। इसलिए इसका नाम **औषधिजा सिद्धि** नाम से प्रख्यात हुआ। एक मनुष्य सन्निपात के दुष्परिणाम स्वरूप मरण शैया पर पड़ा हुआ है। एक आयुर्वेद विद्वान कोई रसायन उसको खिलाता है तो वह तत्काल बोलने लगता है। यह सब कुछ उस औषधि का प्रभाव हुआ जिससे कि वह इस प्रकार बोलने लग गया।

यह उस औषधि के बल से ही हुआ क्योंकि वह इस शक्ति से शून्य हो चुका था। इसी हेतु ऐसी सिद्धि को औषधिजा सिद्धि कहते हैं। जैसे:-

कायाचित्तेन्द्रियाणामामिष्ट उत्कर्ष सिद्धि:।

क्योंकि सिद्धि का अर्थ ही यह है जो काया, चित्त और इन्द्रियों में यकायक परिणाम दिखलाये। उसके बाद तीसरी सिद्धि भगवान पतंजलिदेव ने मन्त्रजा कहकर वर्णित की है। मन्त्र के जपने से किसी के शरीर में तत्काल ही विशेष परिणाम पैदा होता है। उसी का नाम **मन्त्रजा सिद्धि** है। पाठकों ने बहुत जगह यह देखा होगा कि बहुत से लोग कई-कई प्रकार के

रोग हटाने के लिए छोटे-छोटे उपचार किया करते हैं और वे साधारण से किन्हीं साधु-महात्मा के द्वारा बताये हुए साधारण-साधारण हिन्दी के शब्दों में मन्त्र सूर्यग्रहण-चन्द्रग्रहण आदि के समय जप लिया करते हैं, उनके जपने की विशेष विधि हुआ करती है। उस विधि के साथ जप कर लेने पर उन्हीं मन्त्रों से सिद्धियाँ हो जाया करती हैं और उन मन्त्रों को जपने से लोगों का कष्ट निवारण होते देखा गया है। इस प्रकार की सिद्धियाँ मन्त्रजा सिद्धियाँ कहलाती हैं। वेदमन्त्रों के प्रयोग से जो यज्ञ-अनुष्ठान किये जाते हैं और उनसे बड़े-बड़े दिव्य फल प्राप्त किये जाते हैं वे भी मन्त्रजा सिद्धियाँ हैं जिनके फलस्वरूप संसार में बड़े-बड़े अनुपम लाभ देखने में आये हैं। इस मन्त्रजा सिद्धि के बाद चौथी सिद्धि है - तप से होने वाली सिद्धि।

साधक ज्यों-ज्यों अपने द्वन्द-सहन का अभ्यास बढ़ाता है त्यों-त्यों उसको तप से होने वाली सिद्धियाँ उपलब्ध होती चली जाती हैं। जैसे-ध्रुव को ध्रुवत्व, तप से प्राप्त हुआ क्योंकि-हमारे आचार्यों का म।है:-

तपसा ब्रह्मचर्येण देवा मृत्युमुपाघ्नत।

अर्थात्-तप और ब्रह्मचर्य के द्वारा देवताओं ने मृत्यु को जीत लिया। तप के निरन्तर अभ्यास करने पर कायिक और ऐन्द्रिय सिद्धि प्राप्त हो जाती है। यही सब सिद्धियाँ **तपोजा सिद्धियाँ** कहलाती है।

इसी प्रकार से योगी जो अपने अभ्यास के बल से सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं वे **समाधिजा सिद्धियाँ** कहलाती है। जिन सिद्धियों का वर्णन योगदर्शन के विभूति-पाद में आया है वे सभी सिद्धियाँ समाधि..। सिद्धियाँ हैं। सिद्धि शब्द का अर्थ हम पहले ही लिख चुके हैं-

कायचित्तेन्द्रियाणामभिष्टुत्कर्षः सिद्धिः।

अर्थात्-काया, चित्त एवं इन्द्रियों का मनचाहा उत्कर्ष ही सिद्धि है। जैसे इस समय हमारा शरीर गुण धर्मों के कारण दुर्बल एवं कृश है किन्तु तत्व विजयी योगी अपने संकल्प से शरीर के सभी अभावों की पूर्ति कर लेता है एवं किशोर वय बना रहता है। यह उसकी कायिक सिद्धि है। चित्त की चिन्तन शक्ति से सभी अभीष्ट कार्य सिद्ध हो जाना, यह चित्त की शक्ति का परिणाम है। हमारे आँख की शक्ति इस समय सीमित है, किन्तु योगाभ्यास के द्वारा जब हमारी नेत्र शक्ति का उत्कर्ष होगा तब हम करोड़ों कोस तक देखने लगेंगे एवं कर्णेन्द्रिय के द्वारा करोड़ों कोस तक का सुनने लगेंगे। घ्राणेन्द्रिय के द्वारा करोड़ों कोस तक की गन्ध ले

सकेंगे। त्वचा के द्वारा करोड़ों कोस तक का स्पर्श कर सकेंगे, यही हमारी इन्द्रियों का पूरा-पूरा उत्कर्ष है। जिस इन्द्रिय की जिस तत्त्व से उत्पत्ति हुई है वह तत्त्व जहाँ विद्यमान है वहाँ तक उन इन्द्रियों की शक्ति विस्तृत है।

उदाहरणार्थ-जैसे हमारी आँख की उत्पत्ति अग्नि-तत्त्व से है। अत: ब्रह्माण्ड भर में जहाँ तक अग्नि है वहाँ तक अवश्य हमारी आँख देखने वाली हो सकती है। जहाँ तक आकाश है वहाँ तक के शब्द हमारे कान सुन सकते हैं। जहाँ तक वायु है वहाँ तक के दिव्यादिव्य स्पर्श हमारी त्वचा अनुभव कर सकती है। जहाँ तक जल है वहाँ तक के रसों के रस को हमारी रसना (जिह्वा) ग्रहण कर सकती है तथा जहाँ तक पृथ्वी है वहाँ तक के सभी प्रकार के गन्ध को हमारी नासिका ले सकती है। इसी का नाम ''**कायेन्द्रियाणामभिष्टुत्कर्ष:**'' है।

इन सब बातों को सिद्धि का रूप देकर भगवान पतंजलिदेव ने ''योग दर्शन'' के विभूति पाद में वर्णित किया है। इसलिये सिद्धि साधक की अपनी शक्ति है।

शक्ति एवं शक्तिमान का सदा ही अभेद रहता है। शक्ति शक्तिवान से भिन्न चीज नहीं है। वह उसके साथ बिल्कुल अभिन्न है। जिस प्रकार पहलवान व्यायाम करके एवं खुराकें खा-खा करके अपने शरीर को बलिष्ठ बना लेता है तो वह उसका बल सदा उसके काम आया करता है और शरीर में परिपूरित रहता है। बलवान से बल अभिन्न है, इसी प्रकार से शक्तिवान से शक्ति अभिन्न है।

अब रही यह बात कि-बहुत से लोगों का यह मत है कि सिद्धि उत्कर्ष में अन्तराय (बाधा) है। इस सम्बन्ध में भगवान पतंजलिदेव ने भी योगदर्शन के विभूति पाद में ''**ते समाधावुपसर्गा: व्युत्थाने सिद्धय:**'' कह करके प्रातिभ, श्रावण, वेदनादर्श आदि को समाधि के लिए उपसर्ग और उत्थान की स्थिति में सिद्धि कहा है। महर्षि की यह वाणी अवश्य सत्य है क्योंकि सिद्धि प्राप्त व्यक्ति मान-सम्मान के झमेले में पड़कर समाधि-सुख के लिए लापरवाही कर बैठता है। इसलिए इन शक्तियों को महर्षि ने उपसर्ग कहा; किन्तु जिस व्यक्ति ने यम-नियमों की साधना की हो एवं वैराग्य को पूर्णरूपेण जाग्रत कर लिया हो तो वह व्यक्ति मानापमान के झमेले में कभी नहीं पड़ेगा। ऐसे व्यक्ति आप्तकाम हो जाते हैं। उनको कोई भी कामना प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता। इसलिए उनकी स्थिति में सिद्धियाँ कभी भी उपसर्ग नहीं बन सकतीं। सिद्धि मनुष्य का अपना बल है। जिस प्रकार से अच्छे खाद्य-पदार्थ खाने पर

शरीर में बल होना स्वाभाविक है, उसी प्रकार से साधक को मन की एकाग्रता हो जाने पर सिद्धियाँ प्राप्त हो जाना स्वाभाविक है। साधक को साधना-काल में यदि सिद्धि नहीं हो तो उसकी साधना विफल है। इस प्रकार का साधन-हीन व्यक्ति आत्मपद को नहीं प्राप्त कर सकता। जैसे:-

नायमात्मा बलहीनेन लभ्य:।।

इसी कारण भगवान सदाशिव ने अपने मुखारविन्द से स्वयं कहा है:-

नानामार्गैस्तु दुष्प्रापं, कैवल्यं परमं पदम्।

सिद्धि मार्गेण लभते, नान्यथा पद्मसंभव।।

(योगशिखोपनिषद्)

अर्थात्-मनुष्य चाहे हजारों मार्गों में भटकता रहे, कैवल्य-पद को प्राप्त करना बहुत कठिन है। केवल सिद्धि-मार्ग ही एक ऐसा उत्कृष्ट मार्ग है जिसमें सहज ही वह कैवल्य पद प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकरण को लिखने की इसलिए ही आवश्यकता पड़ी क्योंकि बहुत से लोगों के मन में इस प्रकार की भ्रान्ति रहती है कि- सिद्धि मार्ग में चलना ही नहीं चाहिए। वस्तुत: बात तो यह है कि ऐसे लोग गतेन्द्रिय होते हैं। वे लोग कुछ भी नहीं कर सकते, इसलिए।

असक्तस्तत्पदं गन्तुं ततो निन्दां प्रकुर्वते।

क्योंकि वे स्वयं तो सिद्धियों को पा नहीं सकते। इसलिए सिद्धियों की निन्दा करके ही अपने अभिमान की पुष्टि कर लिया करते हैं। इस विषय में एक छोटी सी लोकोक्ति है कि-''लोमड़ी के अंगूर खट्टे''। बात साधारण सी है-एक लोमड़ी ने ऊँचे वृक्ष पर चढ़े हुये अंगूरों की बेल को देखकर अंगूर को खाने का प्रयत्न किया, किन्तु जब वह उनको खा नहीं सकी तो निराश होकर बैठ गई। उसकी इस स्थिति को देखकर किसी ने कहा 'लोमड़ी! तुम ये अंगूर क्यों नहीं खा लेती?' तो उसने उत्तर दिया कि 'भाई खा तो जरूर लेती किन्तु ये अंगूर खाने लायक नहीं है, खट्टे हैं।' यही दशा उन लोगों की है जो बिचारे साधना नहीं कर सकते। खाट पर पड़े रहकर उनको आराम करने की आदत पड़ गयी है। उनको सिद्धि होगी ही नहीं। अत: सिद्धि की निन्दा करके ही अपने मन को सन्तुष्ट कर लेते हैं। अत: विज्ञ पाठकों को चाहिए कि वे अपनी साधना को दृढ़ता के साथ उत्कृष्ट बनायें ताकि सब प्रकार के भव नष्ट हो जायें।

●●●

चरैवेति ! चरैवेति !

आचार्य (डॉ.) दासलाल ब्रह्मचारी

उपनिषद् का उद्‌घोष है ''चरैवेति'' अर्थात् जीवन की इस यात्रा में निरन्तर आगे बढ़ते रहो। वस्तुतः मनुष्य का चरम लक्ष्य है अपने स्वरूप को पाकर परम प्रभु में मिल जाना। जब तक यह लक्ष्य पूरा नहीं हो जाता मनुष्य को निरन्तर आगे बढ़ते रहना है। प्रभु ने कृपा करके मनुष्य में असीम क्षमतायें भर दी हैं। मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी सोच को, असीम क्षमताओं को सकारात्मक दिशा में लगाये ताकि स्वयं के कल्याण के साथ–साथ दूसरों का भी कल्याण कर सके. कल्याण के मार्ग पर चलते हुए मार्ग में अनेक बाधायें–विषमतायें आयेंगी ही। आसुरी सम्पदायें विरोध में खड़े होंगे। आप की निन्दा करेंगे, अपमान करेंगे, झूठे व कुत्सित मार्ग अपनाकर आप को हतोत्साहित करने का प्रयास करेंगे, किन्तु सच्चा व्यक्ति सन्मार्ग को नहीं छोड़ता। वह अपने पुरुषार्थ पर एवं प्रभु के न्याय पर विश्वास रखकर निरन्तर आगे बढ़ता रहता है, यह सोचकर कि सियार, कुत्ते आदि के भौंकने पर भी हाथी अपने चाल को नहीं बदलता। मनुष्य के जीवन में असफलतायें आती हैं, कण्टक भरा मार्ग आता है किंतु सद्‌पुरुष अपने अदम्य उत्साह से निरन्तर आगे बढ़ते चले जाते हैं।

जो महान होता है उसके भी विरोधी संसार में बहुत होते रहे हैं। उन विरोधों व संघर्षों में ही महापुरुषों की परीक्षा होती है और वे लोग इसमें खरे उतरते हैं। सृष्टि में आदि काल से ही दैवी और आसुरी वृत्ति के लोगों का संघर्ष निरन्तर चला आ रहा है। योग की भाषा में इसे 'गुणवृत्ति' का विरोध कहा जाता है। 'गुणवृत्ति' का विरोध भी महान दुःख कहा गया है। श्रेष्ठ पुरुष दूसरे से राग–द्वेष व ईर्ष्या नहीं करते। दुष्ट व्यक्ति दूसरे को हानि पहुँचा कर आगे बढ़ने का प्रयत्न करते हैं और हानि दे कर प्रसन्न होते हैं। सज्जन 'स्पर्धा' तो करते हैं, बिना किसी को नुकसान पहुँचाये आगे बढ़ते हैं। स्पर्धा अच्छी वस्तु है जबकि ईर्ष्या द्वेष है, कालुष्य है, जो कालान्तर में घातक मानस रोग बनकर सामने आता है।

महान पुरुष महान इसलिए होते हैं क्योंकि उनका मन महान होता है, समुद्र के समान गम्भीर एवं अथाह। उनमें दिव्य गुण होते हैं। महापुरुषों के मन में सभी के लिए सुख की भावना रहती है। **'सर्वेभवन्तु सुखिनः'** का भाव उनमें नित्य ही रहता है। नुकसान करने वालों पर भी कभी कुसंकल्प नहीं रखते हैं।

मनुष्य को महान बनने के लिए सदा महापुरुषों का संग करना चाहिए। **'सत्संग किम् न करोतिपुंसाम्'** सत्संग से मनुष्य क्या नहीं बन सकता? **'सताम् महत्ताम् संगः सत्संगः**

सज्जनों, महापुरुषों व सयोगियों का संग ही सत्संग कहलाता है। ऐसे दिव्य पुरुषों के सान्निध्य से संसार की दुर्लभ से दुर्लभ वस्तु भी सुलभ हो जाती है। योग साधक के लिए भागवत् में आया है–

जितासनः जितश्वासः। जितसंगः, जितेन्द्रियः।।

अर्थात् योगी को सर्वप्रथम आसन जयी होना चाहिए। तत्पश्चात् श्वास पर नियन्त्रण करे। साथ ही कुसंग से बचे और जितेन्द्रिय हो। सत्संग से, महापुरुषों के संग से ही मनुष्य कुसंग से बच सकता है। योगी महापुरुषों के शुभ संकल्प से ही कोई कुसंग से बचा रह सकता है। उपनिषद् का उद्घोष है– **''उत्तिष्ठत, जागृत, प्राप्य वरान्निबोधत्''** उठो! जागो!! और महापुरुषों को पाकर अपने लक्ष्य को जानो और उसे प्राप्त करने में जुट जाओ।

महापुरुष इस संसार में मोहग्रस्त अज्ञानी जनों को जगाने के लिए आते हैं और लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उद्बोधन देते रहते हैं। मानव जीवन का अमूल्य क्षण बहुत तेजी से बीत रहा है। जो समय के महत्व को नहीं जानता अथवा जानकर उपेक्षा करता है उसे कालान्तर में बहुत पछताना पड़ता है। महाराज भर्तृहरि जी का एक श्लोक द्रष्टव्य है जिसे गुरुदेव चेतावनी के रूप में प्रायः उद्धृत करते थे। श्लोक का भाव यह है– ''प्रतिदिन सूर्य उदय होता है और अस्त '' जाता है। मनुष्य की आयु का एक दिन समाप्त हो जाता है। व्यापार एवं नाना प्रकार के धंधों में व्यक्ति इतना व्यस्त हो जाता है कि उसे समय का कुछ पता ही नहीं चलता है। प्रतिदिन अपने सगे-सम्बन्धियों को इस संसार से विदा होता हुआ देखता है किंतु फिर भी उसे मृत्यु से भय उत्पन्न नहीं होता है। मोह रूपी प्रमाद मदिरा को पीकर सारा संसार उन्मत्त ।। रहा है।

विवेकी मनुष्य को समय के महत्व को समझना चाहिए मृत्यु अवश्यम्भावी है। यह भौतिक जीवन का अंत है, अस्थायी अन्त है नित्य अन्त नहीं। मृत्यु तो एक पड़ाव है जीवन का, जहाँ जीव थोड़ी देर के लिए विश्रान्ति पाता है। जैसे दिन के अवसान होने पर रात्रि में मनुष्य विश्राम करता है पुनः अगले दिन सूर्योदय होने पर अपने आगे के कार्यों में लग जाता है। यही मृत्यु का भी क्रम है। मृत्यु भी जीव के कल्याण का एक अंग है इससे भी मनुष्य बहुत कुछ सीखता है। जीवन भर का छल प्रपंच, आडम्बर, देहासक्ति आदि सभी का भंडाफोड़ हो जाता है। शरीर की जर्जरावस्था में, बीमारी में देह का झूठा प्रेम ध्वस्त हो जाता है। मनुष्य विचारशील प्राणी होने के कारण सोचता रहता है। विचार शक्ति मनुष्य को प्रभु की अद्भुत देन है। इसी से प्राणियों की उच्चावच अवस्थायें बनती हैं। मृत्यु भूल सुधार का स्वर्णिम अवसर भी कहा जा सकता है। कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को तपस्वियों एवं योगियों से कभी द्रोह व विरोध नहीं करना चाहिए। इसका परिणाम अशुभ होता है।

दिसम्बर माह, अंग्रेजी सन् का अन्तिम माह है। वर्तमान वर्ष में जो उपलब्धियाँ हुई हैं उन पर संतोष करना चाहिए तथा जो असफलताएँ या त्रुटियाँ रह गई हैं उनमें सुधार करना

चाहिए। मनुष्य की आयु में वृद्धावस्था आती है वैसे ही यह अंतिम माह होता है। धैर्य एवं लगन के साथ पुनः अपने आगे के कार्यों में जुटें। सांसारिक कार्यों के साथ–साथ अपनी आध्यात्मिक ध्यान–साधना में निरन्तर जुटे रहना चाहिए। यही ऐसा सर्वश्रेष्ठ कार्य है जिस पर हमारा आगे का जीवन निर्भर करता है। सुख, आरोग्य, धन सम्पत्ति, सुन्दर वपु आदि सभी पुण्य पर आधारित है। ध्यान योग जैसा पुण्यार्जन का दूसरा साधन नहीं है। गुरु–गोविन्द की कृपा हम सभी पर पूर्ण बनी रहे इसी आशा के साथ वर्ष 2009 आप सभी के लिए पूर्ण मंगलमय हो।

''इति''

●●●

निवेदन

मोहन स्वरूप योगी

शत–शत नमन करूँ मैं प्रभु जी
शत–शत नमन करूँ
आशीष दे दो श्री चरणों में
अर्पित शीश करूँ
शत–शत जीवन बीते परवस
कोटिक जतन करूँ
करूणा सागर तुम हो प्रभु जी
तेरा नित मैं ध्यान करूँ
'चन्द्र' सुधारस अमृत पीयूँ
प्रभु जी का मैं ध्यान करूँ

'दिव्य लोक' के वासी प्रभु जी
शत–शत नमन करूँ
'दिव्य भूमि' में छोड़ा मुझको
कैसे धीर धरूँ
'प्रभु राम' जी सद्गुरु मेरे
चरनन शीश धरूँ
'चन्द्र योग' की किरण जगा के
जग की पीर हरी
शत–शत नमन करूँ
प्रभु जी शत–शत.........

आत्मचिन्तन

डॉ. ऋषिराम शर्मा, लखनऊ

परमात्मा ने मनुष्य को बुद्धि दिया है कि इन्द्रियों के द्वारा प्रदत्त ज्ञान के अतिरिक्त वह अपने तथा प्रकृति के सम्बंधों का विश्लेषण कर सके। इसी को आत्मचिन्तन कहते हैं। जो जीवात्मा पुरुष यानि आत्मतत्व तथा प्रकृति के रहस्यों को जान जाता है वह मोक्ष का अधिकारी बन जाता है, क्योंकि भगवान कृष्ण स्वयं स्वीकार करते हैं कि

यः एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न सः भूयोऽभिजायते।।

अर्थात् जिसने पुरुष तथा प्रकृति के रहस्यों को जान लिया, वह शरीर में रहते हुए भी जीवनमुक्त हो जाता है तथा जन्म–मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाता है। मुख्य समस्या यह है कि आत्मचिन्तन कैसे किया जाता है तथा इस मार्ग की बाधायें क्या है। जहाँ तक बाधाओं का प्रश्न है, मेरी ऐसी धारणा है कि जो जिज्ञासु है तथा जिसके प्रयास में सच्चाई है, जिसका हृदय श्रद्धा तथा विश्वास से ओतप्रोत है, उसकी साधना की बाधायें स्वतः हट जाती हैं। इसका कारण यह है कि जिज्ञासु परमात्मा को प्रिय है तथा श्रद्धा–विश्वास में परमात्मा की कृपा का आकर्षण करने की शक्ति है। वैसे आत्मचिन्तन का आरंभ तो श्रवण तथा मनन करने से निष्ठा बनती है, निष्ठा से विवेक–ज्ञान प्रकट होता है, विवेक–ज्ञान से वैराग्य जागृत होता है। तत्पश्चात् अभ्यास तथा वैराग्य से आत्मचिन्तन की प्रक्रिया निदिध्यासन के रूप में आरंभ हो जाती है। इस प्रक्रिया का निर्देशन जगदीश्वर श्रीकृष्ण ने स्वयं किया है कि–

इन्द्रियस्य इन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयो र्न वशमागच्छेत् तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ।।
आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च।।
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः अस्यधिष्ठानमुच्यते।
एतैः विमोहयति एषः ज्ञानमावृत्य देहिनम्।।
तस्मात् त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्।।

अर्थात् आत्मचिन्तन की प्रक्रिया आरम्भ करने के लिए सर्वप्रथम चिन्तन में बाधक समस्याओं को सुलझाना होगा। पहली समस्या है मन का सहयोग। जब मन इन्द्रियों का

अनुगामी होता है तब वह बुद्धि का भी हरण कर लेता है। अतः अपने–अपने विषय–भोगों में रागद्वेष रखने वाली इन्द्रियों के आकर्षण से मन को मुक्त करके बुद्धि के आधीन करना होगा। इन्द्रियों के वशीभूत मन में काम की उत्पत्ति हो जाती है और यही काम ज्ञान का आवरण बन जाता है इसीलिए यह ज्ञानियों का सबसे बड़ा शत्रु है। जिस तरह अग्नि की कभी सन्तुष्टि नहीं होती अपितु घृत तथा काष्ठादि की सामग्री डालने पर वृद्धि ही होती है उसी तरह कामवृत्ति की भी भोग से कभी सन्तुष्टि नहीं होती। इस कारण यह कामवृत्ति मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों को अपना माध्यम बनाकर जीवात्मा को माया के मोहजाल में फंसा देती है। इसीलिए आत्मचिन्तन के साधक को आरम्भ में ही मन तथा इन्द्रियों को बुद्धि के वशीभूत कर इस पापी कामवृत्ति को नष्ट करना अत्यावश्यक हो जाता है।

जब मन राग तथा द्वेष की क्लेशवृत्तियों से मुक्ति हो जाये तब उसमें एकाग्रता परिणाम लाना चाहिए। परन्तु एकाग्रता परिणाम में क्लेशवृत्ति के अतिरिक्त एक और शक्तिशाली बाधा है। वह है कर्मफल जो कि साधक की बहुत बड़ी विवशता है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में इसका संकेत किया है–

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च।।
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः अस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैः विमोहयति एषः ज्ञानमावृत्य देहिनम्।।
तस्मात् त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मान 'प्रजहि ह्येन' ज्ञानविज्ञाननाशनम्।।

अर्थात् आत्मचिन्तन की प्रक्रिया आरम्भ करने के लिए सर्वप्रथम चिन्तन में बाधक समस्याओं को सुलझाना होगा। पहली समस्या है मन का सहयोग। जब मन इन्द्रियों का अनुगामी होता है तब वह बुद्धि का भी हरण कर लेता है। अतः अपने–अपने विषय–भोगों में रागद्वेष रखने वाली इन्द्रियों के आकर्षण से मन को मुक्त करके बुद्धि के आधीन करना होगा। इन्द्रियों के वशीभूत मन में काम की उत्पत्ति हो जाती है और यही काम ज्ञान का आवरण बन जाता है इसीलिए यह ज्ञानियों का सबसे बड़ा शत्रु है। जिस तरह अग्नि की कभी सन्तुष्टि नहीं होती अपितु घृत तथा काष्ठादि की सामग्री डालने पर वृद्धि ही होती है उसी तरह कामवृत्ति की भी भोग से कभी सन्तुष्टि नहीं होती है। इस कारण यह कामवृत्ति मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों को अपना माध्यम बनाकर जीवात्मा को माया के मोहजाल में फंसा देती है। इसीलिए आत्मचिन्तन के साधक को आरम्भ में ही मन तथा इन्द्रियों को बुद्धि के वशीभूत कर इस पापी कामवृत्ति को नष्ट करना अत्यावश्यक हो जाता है।

जब मन राग तथा द्वेष की क्लेशवृत्तियों से मुक्त हो जाय तब उसमें एकाग्रता

परिणाम लाना चाहिए। परन्तु एकाग्रता परिणाम में क्लेशवृत्ति के अतिरिक्त एक और शक्तिशाली बाधा है। वह है कर्मफल जो कि साधक की बहुत बड़ी विवशता है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में इसका संकेत किया है कि–

स्वभावजेन तुकौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेच्छति यन्मोहात् करिष्ये अवशोऽपि तत्।।

अर्थात् प्रत्येक प्राणी अपने स्वभाव से उत्पन्न प्रारब्धकर्मों के फलों से बंधा हुआ है। अज्ञानवश यदि कोई प्राणी किसी कर्म को न करना चाहे तब भी वह प्रकृति के गुणों के वशीभूत उस कर्म को करेगा ही, क्योंकि कर्म के फल में उसका अधिकार नहीं है किंतु कर्म की भावना में उसे स्वतन्त्रता है। इसलिए कर्मबन्धन से मुक्ति का एक ही उपाय है और वह है यह कर्म के पीछे छिपी भावना कि–

प्रारब्धो भोगतो नश्येत् अन्ये ज्ञानेन दह्यन्ते।
इतरे तु शरीरेण तद्द्वेष्टि प्रियवादिनः।।

अर्थात् प्रारब्ध कर्म तो भोग से ही नष्ट होता है, संचित कर्म ज्ञान की अग्नि से जलकर नष्ट हो जाते हैं तथा ज्ञानवान आगामी कर्म निरासक्त होने के कारण कर्माशय तो नहीं बनाते किंतु उसके शरीर से द्वेष करने वाले अनजाने में किये पापकर्मों का तथा प्रेम करने वाले पुण्यकर्मों का फल ग्रहण कर लेते हैं। यह एक महत्वपूर्ण रहस्य है कि इसी कारण पुण्यात्मा महापुरुषों की सेवा से त्वरित आध्यात्मिक उत्थान होता है। ज्ञान से कर्माशय में संचित कर्म कैसे नष्ट हो जाते हैं, इस रहस्य को जगदीश्वर श्रीकृष्ण स्वयं बताते हैं कि–

यथैधांसि समिद्धोऽग्निः भस्मसात् कुरुते अर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा।।
यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः।।
त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मणि अभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित् करोति सः।।
निराशीः यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
शरीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्।।
यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते।।
गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते।।

तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी।।

अर्थात् जिस प्रकार प्रज्ज्वलित अग्नि सर्वप्रकार के ईंधन को जलाकर राख कर देती है उसी प्रकार ज्ञानज्योतिरूपी अग्नि अज्ञान में सम्पन्न सभी कर्मों को जलाकर भस्म कर देती है। जिसके कर्म ज्ञान की अग्नि से भस्म हो चुके हैं तथा जो कर्मफल की आसक्ति से रहित होकर अपने कर्तव्य–कर्मों का सम्पादन करता है, उसी को ज्ञानी कहा जाता है। वस्तुतः जो नित्यतृप्त तथा अनापेक्षित भाव से कर्मफल की आसक्ति से रहित होकर कर्म करता है वह कर्मबन्धन से मुक्त रहता है। जिसके चित्त में कर्मफल की वासना नहीं है, जिसका चित्त तथा बुद्धिगत अहंता पर नियन्त्रण है, जो अपने शारीरिक सुख के लिए धन–सम्पत्ति का संग्रह नहीं करता, वह शरीर से कर्म करते हुए भी पाप–पुण्यरूपी कर्मबन्धन से मुक्त रहता है। जिसका मन प्राप्त परिस्थिति से पूर्ण सन्तुष्ट है, जिसका चित्त रागद्वेषजनित द्वन्द्वों से विचलित नहीं होता, जिसका चित्त ईर्ष्यादि विकारों से मुक्त है, जो कर्म की सफलता अथवा असफलता से विचलित नहीं होता, जो विवेक–वैराग्य से युक्त होकर लोकहित में निरासक्त होकर कर्म करता है, वह माया के कर्मबन्धन से मुक्त हो जाता है। पंचक्लेश तथा कर्मबन्धन से मुक्त चित्त वाले साधक को ही उस परम पुरुष परमात्मा का स्वरूप प्राप्त होता है जिससे इस सम्पूर्ण सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ है।

आत्मचिन्तन की बाधाओं को हटाने का परिणाम होगा अन्तःकरण की शुद्धि तथा चित्त में आत्मचिन्तन की योग्यता। जब तक अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता तब तक आत्म बुद्धिबोधात्मक ही रहती है जिसके कारण शरीर की सीमाओं से प्रतिबन्धित सी प्रतीत होती रहेगी। जब योग से चित्त शुद्ध होता है तभी योगी उसे अपने चित्त में अतिरंजित स्थिति में जान पाता है। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि–

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मनि अवस्थितम्।
यतन्तो अप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्ति अचेतसः।।

अर्थात् योगाभ्यास करते हुए विशुद्ध चित्त में ही योगी आत्मतत्व का अनुभव करते हैं किंतु जो अभी कृतार्थस्थिति को प्राप्त न कर सके हैं तथा जिनका चित्त विशुद्धावस्था में नहीं है, वह प्रयास करते हुए इसका अनुभव नहीं कर सकते हैं। श्रुति भी इसी सत्य की पुष्टि करती है कि–

ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्वः ततो तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः।
ते ध्यानयोगानुगताः पश्यन्ति देवशक्तिं स्वगुणैः निगूढाम्।।

अर्थात् विशुद्ध अन्तःकरण में ज्ञानज्योति के प्रकाश में ध्यानयोगी निर्विकार आत्मस्वरूप का अनुभव करते हैं। अपने योगेश्वर्य में गुप्त चिदिशक्ति को सिद्ध योगी ही देख सकते हैं यानि उसका अनुभव कर सकते हैं। यह ध्यानयोग कैसे सिद्ध हो सकता है इसकी

प्रक्रिया स्वयं अपने मुख से जगदीश्वर श्रीकृष्ण ने बताया है कि–

योगी युन्जीत् सततं आत्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः।।
शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्।।
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युंज्यात् योगमात्मविशुद्धये।।

अर्थात् आत्मचिन्तन के जिज्ञासुओं को अपने मन तथा बुद्धि पर नियन्त्रण रखते हुए एकान्तवास करना चाहिए। सांसारिक कामनाओं की वृत्तियों पर अंकुश लगाकर चित्त को उनसे मुक्त करना चाहिए। ऐसी सामग्रियों का संचय नहीं करना चाहिए जिनकी सुरक्षा की चिन्ता मन की एकाग्रता को भंग न करे। एकाग्र मन से किसी शुद्ध प्रदेश में साधक को ऐसे समतल आसन पर बैठकर ध्यान का अभ्यास करना चाहिए जो न तो अधिक ऊंचा हो और न अधिक नीचा, अपितु समतल हो तथा उस पर कुश, मृगचर्म तथा शुद्ध वस्त्र बिछा होना चाहिए। महर्षि व्यास जी कहना है कि **''आसीनः सम्भवात्''** अर्थात् बैठकर ही ध्यानयोग सिद्ध करना सम्भव है, क्योंकि लेटने पर निद्रावृत्ति तथा खड़ा होकर शरीर पर कष्ट एकाग्रता में बाधक है। अतः आसीनस्थ होकर चित्त को अविद्या के मलावरण से मुक्त कर उसे आत्मतत्व में लीन करने का अभ्यास करना चाहिए। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि योगाभ्यास से ही यह सम्भव है, अन्यथा शब्दज्ञान प्राप्त कर लेने से आत्मतत्व का ज्ञान नहीं होता, क्योंकि–

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन् आत्मनि तुष्यति।।
सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्वतः।।
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।।

अर्थात् जब योगसाधना करते–करते चित्तवृत्तियाँ निरुद्ध हो जाती हैं और चित्त उपराम हो जाता है यानि चित्त में वृत्ति के अभाव में आत्मप्रकाश दिखाई देने लगता है ठीक वैसे ही जैसे स्क्रीन पर प्रोजेक्टर से फेंकी जाने वाली फिल्म के अभाव में केवल प्रकाश ही दिखाई देता है तथा चलचित्र के दृश्य लोप हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में आत्मप्रकाश से प्रकाशित चित्त में योगी को सर्वव्यापी, सर्वाधार आत्मतत्व का अनुभव होता है। आत्मतत्व आनन्द का सागर है, अतः योगी आत्यन्तिक अक्षय सुख का प्रज्ञाबुद्धि के माध्यम से अनुभव

करता है जिसको पाकर पुन: विषय-सुख की चाह सदैव के लिए समाप्त हो जाती है। आत्मतृप्त योगी के लिए फिर कोई संसार का आकर्षण शक्तिशून्य हो जाता है तथा उसका चित्त आत्मचिन्तन में डूबता चला जाता है। संसार का आकर्षण गुणात्मक होता है और जिस गुण का प्रभुत्व होता है उसी अनुकूल चित्त की प्रवृत्ति होती है। अत: चित्त में रजोगुण तथा तमोगुण का प्रभुत्व नहीं होने देना चाहिए। साधनाकाल में सतोगुण सहायक होता है, क्योंकि शुद्ध सतोगुण शुद्ध जल के समान है जिसमें आत्मप्रतिबिम्ब देखा जा सकता है और यही आत्मचिन्तन की सिद्धि का कारण बन जाता है। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण बताते हैं कि–

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्।।
युंजन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मष:।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शं अत्यन्तं सुखमश्नुते।।
सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शन:।।

अर्थात् जब रजोगुण के शान्त हो जाने पर जब मन शान्त हो जाता है तब योगी को सतोगुण की स्थिति में उत्तम सुख की प्राप्ति होती है, क्योंकि मल के नाश से ब्रह्माकार वृत्ति चित्त में प्रकट हो जाती है। इस प्रकार योगाभ्यास करते हुए जब योगी का अन्त:करण शुद्ध हो जाता है तब उसे आत्मसाक्षात्कार होता है और अक्षय सुख का अनुभव होता है, बुद्धि में शरीरगत सीमायें तथा प्रतिबन्ध समाप्त हो जाते हैं, तब वह सभी प्राणियों में अपने व्यापक आत्मस्वरूप का अनुभव करता है तथा अपने आत्मस्वरूप में समस्त प्राणिजगत को देखते है। यही समदर्शन आत्मचिन्तन की सिद्धि का परिणाम है।

●●●

जिस कर्म के द्वारा भगवान हरि संतुष्ट हो सकें, वास्तव में वही कर्म कहा जा सकता है और जिससे मुकुन्दचरणों में रति उत्पन्न हो सके, वही सच्ची विद्या है। जिस वर्ण में, जिस कुल में और जिस आश्रम में रहकर श्रीकृष्ण–कीर्तन करने का सुन्दर सुयोग प्रापत हो सके, वही वर्ण, कुल, आश्रम शुभ और परम श्रेष्ठ है।

महिमानं सवांई-धाम्नः वर्णने कः क्षमः सुधीः

द्वारका प्रसाद शर्मा, लखनऊ

87

जानामिनामानि च यानि कानि
ज्ञातानि यावानि च कर्णगहरे।
सन्त्येव तानि च मितानि श्रुतानि तावत्,
गुरो दीक्षितानामुत साधकानाम्।।

88

ये येऽपि सान्निध्यमवापुरस्य, श्री सद्गुरोर्येन केनापि रीत्या।
जाताः सुधन्याश्च प्रभूतभाग्याः, जनुः सार्थकत्वञ्चतथैव लेभिरे।।

89

तथापि तेषां कतिभूरिभाग्याः, प्रत्यक्षसान्निध्यमवाप्नुवन्तः।
अतस्ते तथाऽपि च वर्णनीयता, उल्लेख्यताञ्चापि प्रगन्तुमर्हाः।।

90

श्री दासलालः प्रथमस्तुवाच्यः, यः पट्टशिष्यस्य पद बिभर्ति।
गुरौयस्य निष्ठा विपुला च निर्मला, दरीदृश्यतेऽद्यावधि निर्व्यलीका।।

91

यथोपदिष्टं गुरुणा करोति, नाम्ना तथा कर्मणा ब्रह्मचारि सः।
गीर्वाणवाण्यां समलङ्कृतः सः, अभिज्ञश्च आंग्लेऽपि बहुश्रुतः सः।।

92

कांस्कांश्च सिद्धीः समलञ्चकार सः,
स एव जानाति क्षमस्तु कोऽन्यः।
विद्वान्, गुणज्ञो, गुणग्राहकः सः,
सम्पादकः "सिद्धयोगस्य" नम्रः।।

93

अन्ये च मन्ये भुवनेन्द्रझा श्रीः,
लेभे गुरुणां यः सन्निकर्षम्
छायेव तेषां समभूत्, सदानुगः,
अद्यापि भुवनेन्द्रपतिः शरण्यः।।

94

अनन्तरं "चन्द्रहासः" स्वनाम्ना,
गुरुप्रियः लब्धप्रतिष्ठसाधकः।
गुरोः सुकीर्ति प्रथयिष्णुरास्ते,
योगप्रकारे यतमान एव।।

95

सन्त्येन्द्र सिंहोऽप्यपरः कदाचित्
अवाप श्री सद्गुरु–कामनातः।।
स लब्धस्थानोऽपि विभ्रंशितोऽभूत्,
तथापि संस्कार युतः स आसीत्।।

96

श्री पालिवालोऽपि सवाई क्षेत्रतः,
शिष्यत्वमासाद्य गुरोर्दयातः।
उच्चैः पदं योगमार्गाधिरूढः
स योगदीक्षां प्रददाति योगी।।

97

श्री ओम् प्रकाशः स स्वकीयनाम्ना,
गुरौ बिभर्ति परमाञ्च निष्ठाम्।
स लब्धज्ञानः परमश्च साधकः,
लखनऊ स्थितस्याश्रम–नायकः सः।।

98

भद्रासु महिलासु उमा च रुक्मिणी
सरिता च नाम्नी भरद्वाज वंशिका।
एवाः सुनार्यः गुरुपाद सेविकाः,
उच्चां स्थितिं भ्राजमानास्तु सन्ति।।

99

झाँसीस्थ संगीत केन्द्रेऽपि यत्कृपा,
श्री सद्गुरुणां परमा हि दृष्टा।
विराजमाना बहुशो हि वारं
चरणा गुरुणां विलसन्त एव।।

100

यथा गुरुणा गणना गुणानाम्,
कर्त्तुं न कश्चित् प्रभवेत् कदाचित्।
देश–विदेशेऽपि च वर्तमानान्,
असंख्य शिष्यान् गणने क्षमः कः।।

101

ध्यात्वा गुरुणां चरणौ मुहुर्मुहुः,
अष्टाङ्गसहित प्रणमामि प्रथमम्।
तथैव सर्वांश्च जनान् गुरूणाम्,
प्रणम्य विरमामि समाप्तुमीहे।।

द्वारका प्रसाद शर्मा

विपत्तियों से डरिए नहीं जूझिए

मनुष्य की इच्छा हो या न हो, जीवन में परिवर्तनशील परिस्थितियाँ आती रहती हैं। आज उतार है तो कल चढ़ाव। चढ़े हुए गिरते हैं और गिरे हुए उठते हैं। अधिकांश व्यक्ति सुख, सुविधा, संपन्नता, लाभ, उन्नति आदि में प्रसन्न और सुखी रहते हैं, किंतु दुःख, कठिनाई, हानि आदि में दुःखी और उद्विग्न हो जाते हैं। यह मनुष्य के एकांगी दृष्टिकोण का परिणाम है। कठिनाइयाँ जीवन की एक सहज स्वाभाविक स्थिति है, जिन्हें स्वीकार करके मनुष्य अपने लिए उपयोगी बना सकता है। जिन कठिनाइयों में कई व्यक्ति रोते हैं, मानसिक क्लेश अनुभव करते हैं, उन्हीं कठिनाइयों में दूसरे व्यक्ति नवीन प्रेरणा, नव उत्साह पाकर सफलता का वरण करते हैं। सबल मन वाला व्यक्ति बड़ी कठिनाइयों को भी स्वीकार करके आगे बढ़ता है तो निर्बल मन वाला सामान्य–सी कठिनाई में भी निश्चेष्ट हो जाता है।

सद्गुरु कृपालीला

जगदीश राय बंसल, उत्तम नगर, दिल्ली

लेखक नहीं लेख लिखूं, गुरुवर मैं अनजान।
बैठ किनारे डूबन डरा, अभय करो जी आन।।

उत्तर प्रदेश की उद्योग नगरी कानपुर में निवास करने वाले हमारे एक उनहत्तर वर्षीय आदरणीय गुरु भाई जी का नाम श्री सुरेश चन्द दीक्षित है एवं उनकी बासठ वर्षीय अर्धांगिनी का नाम श्रीमति सुशीला दीक्षित है। गुरु भक्ति से ओतप्रोत इस धर्म परायण दम्पति ने गुरु पूर्णिमा के शुभ दिनकर वातावरण सवाई आश्रम में अट्ठारह जुलाई सन् 2008 को यह प्रसंग सुनाया कि किस प्रकार से अकारण दयालु, दीनबन्धु, दया सागर, प्राणी मात्र के प्रति (पल रक्षक) योगीराज श्री चन्द्र मोहन जी महाराज के चरण कमलों से जुड़ने का संयोग बना।

भाग्य विधाता गुरु देव भगवान, किस प्राणी का, किस समय और कैसे, कर्मों का भुगतान करा देते हैं, इस रहस्य को तो कोई नहीं जान पाया। मगर ऐसा ही कुछ इस दम्पति ने बतलाया कि आराध्यदेव गुरु भगवान के स्थूल रूप से दर्शन लाभ उठाने से पहली ही यात्रा के समय जो घटना घटी, भुलाई नहीं जा सकती। घटना को याद कर आदरणीया गुरु बहिन श्रीमति सुशीला दीक्षित घबराए चेहरे पर मुस्कान बिखेरते हुए, जिस जोश के साथ बयान कर रही थी, वह मानो आज की ही ताजी घटना है।

यह कृपा प्रसंग सन् 1989 के जून माह का है। जब अर्न्तयामी योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का त्रिदिवसीय योग प्रचार कार्यक्रम मध्य प्रदेश के मुरैना की पचायती धर्मशाला में सामूहिक रूप से गुरु भाईयों द्वारा बड़ी धूम धाम से मनाया जा रहा था। इस कार्यक्रम के उपलक्ष्य में मुरैना निवासी आदरणीय गुरु भाई रामगोपाल दीक्षित ने अपने साढू कानपुर निवासी श्री सुरेश चन्द जी दीक्षित को हर बार की भांति, सपरिवार विशेष रूप से सादर आमन्त्रित किया कि आप अपनी सारी व्यवस्थाएं छोड़ कर एक बार हमारे आराध्य देव भगवान के दर्शन लाभ अवश्य लें। यह तो सभी गुरुभाई बहिन अच्छी तरह जानते हैं कि गुरु देव भगवान के संकल्प से ही सब लक्षण स्वतः बन जाते हैं। पुरानी कहावत है कि–

माली चुनता फूल जिस तरह, फूलों भरी कतार से।
निज बच्चों को आप खेंचते, भीड़ भरे संसार से।।

परिणामतः, इस बार निमन्त्रण मिलने के पश्चात् आदरणीय गुरुभाई श्री सुरेश चन्द दीक्षित ने विचार किया कि चलो, चलते हैं। देखेंगे कैसे गुरु जी हैं? नहीं जाएंगे तो साढू साहिब बहुत नाराज हो जाएंगे।

अपने निर्णय के अनुरूप आदरणीय भाई श्री सुरेश चन्द्र दीक्षित ने अपनी धर्मपत्नी श्रीमति सुशीला दीक्षित, अपने दस वर्षीय पुत्र विनोद दीक्षित एवं आठ वर्षीय पुत्र मनोज दीक्षित सहित अनमने मन से निर्धारित तिथि को मुरैना के लिए यात्रा प्रारम्भ की। यह सम्पन्न परिवार कानपुर रेलवे स्टेशन से एक्सप्रेस रेल गाड़ी जो पश्चिमी बंगाल के हावड़ा रेलवे स्टेशन से चल कर जोधपुर पहुँचती है, आगरा तक के लिए सवार हो गया। रेलगाड़ी अपने कोतुहल कौशल के साथ निश्चित समय पर आगरा रेलवे स्टेशन पर पहुँच गई और दीक्षित परिवार सकुशल प्लेट फार्म पर उतर गया।

इससे पहले कि ये भक्त परिवार यहाँ से मुरैना के लिए कदम आगे बढ़ाते, आदरणीय गुरु बहिन श्रीमति सुशीला दीक्षित ने लघुशंका की इच्छा प्रकट की। आस–पास कोई पेशाब घर न देख कर गुरु भाई श्री सुरेश चन्द दीक्षित ने पास खड़ी रेलगाड़ी, जिससे अभी यात्रा कर उतरे थे, की ओर संकेत करके कहा कि अन्दर बाथरूम में ही चली जाओ। अपने पति देव से संकेत पा कर श्रीमति सुशीला दीक्षित तुरन्त रेलगाड़ी में चढ़ गई और बाथरूम में प्रवेश कर गई। ज्यों ही श्रीमति सुशीला दीक्षित ने बाथरूम का दरवाजा बन्द किया, रेलगाड़ी चल पड़ी। आदरणीय गुरु बहिन श्रीमति सुशीला दीक्षित आनन–फानन में लघुशंका से निवृत होकर बाथरूम से बाहर निकली तो एक्सप्रेस गाड़ी की गति बढ़ती जा रही थी। क्षण भर के लिए आरदरणीय बहन जी ने यह भी सोचा कि गाड़ी सटिंग तो नहीं कर रही? मगर नहीं, नहीं ...... अब क्या करूं? इसी तीव्र उधेड़ बुन में पीछे की तरफ पति देव को भी देखा, मगर गाड़ी बहुत आगे आ चुकी थी। **किंकर्तव्यविमुढता** की स्थिति में आदरणीय गुरु बहिन श्रीमति सुशीला दीक्षित ने विपरीत दिशा में ही मुंह किए हुए झट से रेलगाड़ी से नीचे छलांग लगा दी। रेलगाड़ी में बैठे यात्रियों में हल चल मच गई। मरी, गई–गई, वो मरी, सवारियों की आवाजें श्रीमति दीक्षित को साफ–साफ सुनाई दे रही थी। इस समय रेलवे की इस लम्बी गाड़ी का पिछला डिब्बा प्लेटफार्म छोड़ चुका था। अर्थात् रेल गाड़ी की गति में चूक नहीं थी।

आश्चर्य! महान आश्चर्य **'जाको राखे साईंयां मार सके ना कोए'**, वाली कहावत के अनुसार आदरणीय गुरु बहिन श्रीमति सुशीला दीक्षित बाल–बाल बच गई। दिल की धड़कन के अतिरिक्त खरोंच तक न आई। इसलिए आदरणीय बहन जी स्वयं अपने पैरों से चल कर प्लेट फार्म पर खड़े अपने चिंतित स्वजनों से आ मिली।

इस घटन से प्रभावित, गुरु कृपाओं से अनभिज्ञ एवं गुरु महिमा से अछुता यह भक्ति परिवार मुरैना पहुँच गया। आदरणीय गुरु भाई एवं श्री सुरेश चन्द के साढू श्री राम गोपाल दीक्षित इस परिवार के साथ उमंग भरी आशा से कार्यक्रम स्थल पर उपस्थित हुए। कालचक्र, युगचक्र और जग चक्र तीनों को एक साथ चलाने वाले, अखण्ड–मण्डलाकार, योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज आसन पर, विराजमान, मन्द–मन्द मुस्करा रहे थे। आगन्तुक

परिवार ने सर्व समर्थ गुरु देव महाराज के दर्शन किए एवं चरण कमलों में प्रणाम किया। किसी गुरु भाई ने यथार्थ ही लिखा है कि–

सब पर कृपा करते हैं, केवल शिष्यों पर ही नहीं।

देखना अगर किसी को है, तो भई देख ले सही।।

अन्तर्यामी गुरु जी महाराज ने आदरणीय गुरु बहिन श्रीमति सुशीला दीक्षित को लक्ष्य करके कहा बच गई? उस समय तो यह दम्पती इस बात को समझ पाने में पूर्णतया असमर्थ रहे। मगर निम्न लिखित पंक्तियां अवश्य प्रमाणित होती नजर आई–

एक बार जो दर्शन पाता है। वो आपका ही हो जाता है।

इसलिए आदरणीय गुरु भाई श्री सुरेश चन्द दीक्षित के मन में तरह–तरह के भाव चर करने लगे, जो पंक्तिबद्ध किये जा रहे हैं–

बड़ी भूल की जो मैं देरी से आया।

मूल भी खाया और ब्याज भी खोया।। 1।।

चरणों में भेंट चढ़ाने को, लाया तो मैं कुछ भी नहीं।

यों गले में पहनाने को, हाथ सुगन्धित हार नहीं।। 2।।

आदरणीय इस दम्पति को अन्य बातों के अतिरिक्त एक और विलक्षण घटना जीवन में पहली बार प्रत्यक्ष रूप से अपनी खुली आंखों से देखने को मिली। बात इस प्रकार हुई कि मुरैना निवासी एक डा. साहिब, जिनका नाम श्री कमलेश है एवं उनकी धर्मपत्नी का नाम श्रीमति बीना है। अपनी एक बीमार लड़की को लेकर सर्वसमर्थ जी महाराज की शरण में आए। लड़की पूर्णतया बेहोश पड़ी थी और अन्तिम सांस गिन रही थी। अच्छे से अच्छे डाक्टरों ने हार मान कर लड़की को राम भरोसे छोड़ दिया था। लड़की के पिता जी जिनकी अच्छे डाक्टरों में गिनती की जाती है, पूर्णतया निराश हो चुके थे। लड़की को सिद्धेश्वर गुरु देव भगवान के सामने लाया गया। औपचारिक वार्तालाप के पश्चात्, भाग्य विधाता ने लड़की को अपने अति निकट करा कर, उसका सिर सहलाना प्रारम्भ किया। अन्य व्यवस्थाओं से अनभिज्ञ की भांति देर तक जीवन दाता सिर सहलाते रहे।

यकायक लड़की ने आंखें खोली। हाथ–पैरों में गति हुई। सभी के चेहरे खुशी से चमक उठे। अकारण दयालु प्राण दाता गुरु देव महाराज लड़की को प्राण दान दे चुके थे। सिद्धों के सरदार की जय। आजकल वह लड़की गुरु देव भगवान की छत्रछाया में सुखमय जीवन यापन कर रही है। यह घटना प्राणी मात्र को चकित करने वाली है। जो आज तक सुना भी नहीं था, वह अपनी आंखों से देख लिया। सर्वसमर्थ, प्राणदाता, आराध्य देव गुरु भगवान की स्तुति तो वाणी से परे का विषय है। मात्र आरती की पंक्तियां ही याद आ रही हैं।

सात द्विप नव खण्ड में, श्री सद्‌गुरु से बड़ा न कोए।
करता करे ना कर सके· श्री सद्‌गुरु करे सो होए।।

आदरणीय दम्पती ने मुरैना में ही दीक्षा ग्रहण कर अपना जीवन सफल बनाया। आज कल कानपुर में ''श्री सिद्ध गुफा योग साधक मण्डल'' के नाम से नब्बे के लगभग गुरु भाई–बहिन हैं, जो प्रत्येक रविवार को क्रमश: प्रत्येक घर में गुरु जी का सत्संग, उपलब्धियां, समस्या विचार एवं अनुभव वार्ता जोर शोर से करते हैं। साधकों की योग स्थिति बहुत अच्छी है। सत्संग वाले घर में ही सत्संगियों के भोजन की व्यवस्था चलती है। भोजन में मीठी–मीठी खीर को प्राथमिकता दी जाती है।

सिद्ध योग की गंगा बहती है, गुरुदेव तुम्हारे चरणों में।
प्रभु रामलाल के चरणों में, गुरु चन्द्र मोहन के चरणों में।।

●●●

आत्मविकास

जीवन–साधना की एक सीढ़ी आत्मविकास है। आत्मविकास अर्थात् आत्मीयता का विकास करना। सामान्यत: लोगों का चिंतन और क्रियाकलाप अपने शरीर, मन तथा अपने परिवार की सुविधाओं तक ही सीमित रहता है। स्मरण रखा जाना चाहिए कि मानवीय व्यक्तित्व ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कलाकृति है। इसके पीछे स्रष्टा का जो श्रम लगा है, उसके पीछे उसका यही उद्देश्य है कि मनुष्य उसके सहयोगी की तरह सृष्टि की सुव्यवस्था में संलग्न रहकर हाथ बँटाए। इस स्थिति में पहुँचा व्यक्ति सीमित न रहकर असीम बन जाता है और उसका कार्यक्षेत्र भी व्यापक परिधि में सत्प्रवृत्तियों का संवर्द्धक बन जाता है। ऐसे व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को घटाने और निर्वाह की न्यूनतम आवश्यकताएँ रखकर शेष क्षमता और संपदा को सत्प्रयोजनों में लगाए रहते हैं।

श्री प्रभु चरणों में समर्पित

राजेश कुमार सिंह, बलिया

जीवन की नैया टूटी, और दूर है किनारा,
डूबने ही वाला हूँ मैं, वे वक्त वे सहारा।
1. अपने ही दे रहे हैं, कितने अजीब धोखे,
दरिया से मिल रहे हैं, आंसू भी मेरे होके;
सांसें भी देखो कैसे, लिपट रहे तूफां से,
खुद ही खुद से रूठे, क्या कहूँ जुबां से;
मजधार में लिखा है, अपना बसर गुजारा,
डूबने वाला------
2. जीने की चाह फिर भी, बचा है थोड़ा दिल में,
या रब तुझे पुकारु, गर्दिशे महफिल में,
सुना है दम पे तेरे, रोशन ये चांद तारे,
आ जाओ मेरे प्यारे, तु जटा–जूट धारे;
मिले हो आप उसको, जो दिल से है पुकारा
डूबने ही वाला-------
3. गुनगुनाने से तुम, समझो न गा रहा हूँ,
सिसकियां गमों की, जग से छुपा रहा हूँ,
प्रभुजी तुमको अर्पण, ये आखिरी आहें,
अब खुद में समेटो हमें, फैलाओं बाहें,
राजेश इस जहां में, आना न हो हमारा
डूबने ही वाला------

यौगिक प्रश्नोत्तरी

आचार्य पूर्णचन्द्र पन्त

साधकों के प्रश्न एवं उत्तर श्री सदगुरु देव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के द्वारा।

प्रश्न– हे गुरुदेव! योग दर्शन में **"योगश्चित्त वृत्ति निरोध:"** कह कर योग की परिभाषा की गई है। किंतु मैं यह नहीं समझ पा रहा हूँ कि चित्त किसे कहते हैं, चित्त वृत्तियाँ क्या हैं और उनके निरोध से क्या अभिप्राय है? अत: इस विषय पर प्रकाश डालने की कृपा कीजिए।

उत्तर– हे सौम्य! सुनें – मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इन्हें अन्त:करण चातुष्ट्य कहा गया है। अत: चित्त शब्द अन्त:करण का बोधक है। चित्त को सत्व भी कहा गया है। सत्व का अर्थ अन्त:करण है। चित्त और मन ये दोनों भी एक दूसरे के समानार्थी हैं। गीता में चित्त के लिए ही 'मन' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त सांख्य में जिसे अन्त:करण कहा गया है। उसे ही योग में चित्त की संज्ञा दी गई है। इस प्रकार मन, बुद्धि और अहंकार ये तीनों चित्त में परिगणित हैं और चित्त का शाब्दिक अर्थ अन्त:करण ही है।

हमारा चित्त सत्व, रज, तम प्रकृति के इन तीन गुणों तथा पंचमहाभूतों से प्रभावित रहता है। अत: इसमें वृत्ति संस्कार प्रतिक्षण चलता रहता है। जिस प्रकार अगाध समुद्र में प्रतिक्षण तरंगे उठती रहती हैं, एक लहर बैठ जाती है तो दूसरी उठ खड़ी होती है। उसी प्रकार रागद्वेष आदि के कारण चित्त में हर समय कोई न कोई वृत्ति बनी रहती है। चित्त जड़ है त्रिगुणात्मक है एवं पंचमहाभूतात्मक है। वह आत्मा के प्रकाश से प्रकाशित होकर इन्द्रियों की सहायता से रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि विषयों को ग्रहण करता है। उन–उन विषयों के चिन्तन से चित्त में जो परिणाम अथवा विकार उत्पन्न होते रहते हैं उन्हें वृत्तियाँ कहते हैं।

जैसे नेत्रेन्द्रिय (आंख) ने किसी सुन्दर रूप को देखा मन से उस पर चिन्तन करना आरम्भ कर दिया कि यह सुन्दर रूप है इसे कैसे प्राप्त किया जाये? बुद्धि का समर्थन पाकर वह भावना पुष्टि होती गई उसने क्लिष्ट वृत्ति का रूप धारण कर लिया। इसी प्रकार रस (स्वाद) ग्रहण करना रसनेन्द्रिय (जिह्वा) का विषय है। स्पर्श ग्रहण करना त्वगेन्द्रिय (त्वचा) का विषय है। शब्द सुनना श्रोत्रेन्द्रिय (कान) का विषय है। इस प्रकार इन्द्रियों के द्वारा पंचमहाभूतों के विषयों को ग्रहण करना और चित्त का तत्तद विषयाकार हो जाना ही चित्त वृत्ति है।

योग दर्शन में प्रमाण, विपर्यय, विकल्प निद्रा और स्मृति भेदों से चित्त वृत्तियों को पांच भागों में बांटा है। प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम इन प्रमाणों द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है। उसे

वृत्ति कहते हैं।

दूसरी वृत्ति का नाम है– **विपर्यय**। विपर्यय का अर्थ है– मिथ्याज्ञान अर्थात् किसी वस्तु के वास्तविक स्वरूप को न समझकर उसे दूसरी ही वस्तु समझ लेना विपर्यय वृत्ति है।

तीसरी वृत्ति है– **विकल्प।** सुनी सुनाई बातों के आधार पर अविद्यमान वस्तु की कल्पना कर लेना विकल्प वृत्ति कहलाती है।

चौथी वृत्ति निद्रा और पांचवी वृत्ति स्मृति कही गई है। प्रमाण, विपर्यय, विकल्प और निद्रा इन चार प्रकार की वृत्तियों द्वारा अनुभव में आये हुए विषयों के संस्कारों को पुनः प्रगट हो जाना स्मृति वृत्ति कहलाती है।

''**योगश्चित्तवृत्ति निरोधः**'' अपने इस सूत्र में भगवान पतंजलि देव जी महाराज ने चित्त वृत्ति निरोध को ही योग बताया है। वस्तुतः योग का अर्थ है समाधि और चित्त वृत्ति निरोध का अर्थ है– चित्त का वृत्तियों से रहित हो जाना, चित्त में किसी प्रकार की वृत्ति का उदय न होना अर्थात् मन की चंचलता का नाश हो जाना तथा सांसारिक विषयों के चिन्तन का बिल्कुल–बिल्कुल अभाव हो जाना और मन का तैलधारावत परमेश्वर के चिन्तन में लगे रहना, एक मात्र उसी का बोध होते रहना यही चित्त वृत्ति निरोध है। इसी अवस्था को समाधि कहा गया है।

अखिल लोक पावन जगदात्मा श्री कृष्ण चन्द्र जी महाराज ने गीता के छठे अध्याय में चित्त वृत्ति निरोध समाधि का वर्णन करते हुए कहा है–

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः।। 6/19
यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योग सेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति।। 6/20
सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः।। 6/21
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।। 6/22
तं विद्याद् दुःखसंयोग वियोगं योग संज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा।। 6/23

जैसे स्पन्दन रहित वायु वाले स्थान में रखे हुए दीपक की लौ एकदम स्थिर हो जाती है। योग का अभ्यास करते हुए वश में किये हुए योगी के चित्त की भी वही उपमा की गई है। अर्थात् योगाभ्यास द्वारा वश में किया गया योगी का चित्त बिल्कुल निश्चेष्ट और स्थिर हो

जाता है।

योगाभ्यास करते हुए जिस अवस्था में निरुद्ध (वश में किया हुआ) चित्त स्थिर (शान्त) हो जाता है तथा जिस अवस्था में स्वयं अपने आप से अपने आपको देखता हुआ साधक अपने आप में ही सन्तुष्ट हो जाता है।

जो सुख आत्यन्तिक, अतीन्द्रिय और बुद्धिग्राह्य है उस सुख का जिस अवस्था में वह ध्यान योगी अनुभव करता है और जिस सुख में स्थित हुआ वह तत्व से फिर कभी विचलित नहीं होता। जिस अलभ्य लाभ को प्राप्त कर लेने के बाद योगी उससे बढ़कर दूसरा और कोई लाभ नहीं समझता और जिसमें स्थित होने पर वह योगी भारी से भारी दुःख से भी विचलित नहीं किया जा सकता। जिसमें दुःखों के संयोग का ही वियोग है। उसी को योग नाम से जानना चाहिए। उस ध्यान योग का अभ्यास बिना उकताये चित्त से श्रद्धापूर्वक एवं निश्चय पूर्वक करना चाहिए।

प्रश्न– हे गुरुदेव! आपकी कृपा से मैं यह बात भली–भांति समझ गया हूँ कि चित्त क्या है और चित्त वृत्ति निरोध से क्या अभिप्राय है किंतु चित्त वृत्ति निरोध हो कैसे? क्योंकि मन अत्यन्त चंचल है। उसका वश में होना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव सा है।

उत्तर– हे पुत्र! तुम ठीक कहते हो मन वायु से भी अधिक चंचल है। इस बात को भगवान श्रीकृष्ण ने भी स्वीकार किया है। किंतु साथ ही उन्होंने उसे वश में करने का उपाय भी बतला दिया है। जिज्ञासु अर्जुन की शंका का निवारण करते हुए भगवान कहते हैं।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।

हे अर्जुन! इसमें सन्देह नहीं है कि मन अत्यधिक चंचल है और बड़ी कठिनता से वश में होने वाला भी। किंतु अभ्यास और वैराग्य के सहारे उसे वश में किया जा सकता है।

भगवान पतंजलि देव जी ने **'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः'** कहकर जहाँ योग की परिभाषा की है वहां योग दर्शन समाधि पाद के 12वें सूत्र में अभ्यास और वैराग्य को ही समाधि प्राप्ति का साधन बताते हुए वे आगे लिखते हैं। **'अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः।'** अभ्यास से वैराग्य की पुष्टि होती है और वैराग्य से अभ्यास में प्रवृत्ति बढ़ती है। इस प्रकार अभ्यास और वैराग्य दोनों एक दूसरे के पूरक और पोषक हैं।

अतः साधक को अपने गुरु मन्त्र का निरन्तर जप करते रहना चाहिए और गुरुदेव द्वारा बताई विधि के अनुसार नियमपूर्वक ध्यानाभ्यास करना चाहिए। इसके साथ ही अपने मन को सांसारिक आकर्षणों से हटाते रहना चाहिए। ऐसा करने से वैराग्य के भाव पुष्ट होते जायेंगे और मन स्वतः ही ध्येय विषय में एकाग्र होना आरम्भ हो जायेगा।

●●●

स्वर योगी हि परमौषधि

डा. जे.पी. शर्मा, पौंटा साहिब, सिरमौर (हिमाचल प्रदेश)

गर्भस्थ शिशु जैसे ही धरा पर आता है, वह जोर–जोर से रोना शुरू कर देता है। उसके रोने, चिल्लाने की आवाज से बालक के स्वर के बारे में आभास हो जाता है कि बच्चा मूक नहीं है। प्रकृति का विधान सभी प्राणी मात्र को स्वर से आवाज निकालने का बना हुआ है। स्वर या आवाज के सहारे ही दूसरे प्राणी, जीव उसके बारे में जान लेते हैं कि रोने वाले अथवा बोलने की क्या आवश्यकता है। संगीत के सात स्वर (सा,रे,ग,म,प,ध,नि) होते हैं, जिनसे गाने बजाने की स्वर–ताल बनाई जाती है। इसी प्रकार भाषा के तीन स्वर (लघु, मध्यम, दीर्घ) होते हैं। उसी प्रकार आध्यात्मिक रूप से 'योग' में तीन स्वर (ईडा, पिंगला, सुषुम्ना) में होते हैं। अकेले स्वर की कोई महत्ता नहीं है क्योंकि लय, तान अन्य स्वरों के सहयोग से बनती है, जिस प्रकार भाषा के एक अक्षर की महत्ता नहीं है। शब्द, एक से अधिक 'अक्षरों' के मिलने से बनता है, उसी प्रकार लय ताल भी एक से अधिक स्वरों के योग से बनती है, इसीलिए 'स्वर योग' कहना अति उचित है। स्वरोदय शास्त्र में इसका विस्तृत ज्ञान मिलता है। स्वर शास्त्र सीखने के लिए हमें श्वास–प्रश्वास की गति के बारे में ज्ञान रखना अति आवश्यक है। यथा–

कायानगरमध्ये तु मारुत: क्षिति पालक:।

अर्थात् देहरूपी नगर में वायु (प्राण) राजा के समान है। वायुमण्डलीय हवा जब शरीर के अन्दर प्रवेश पा लेती है तो वह 'प्राण' कही जाती है। वायु का नासिका छिद्रों द्वारा शरीर में प्रवेश 'नि:श्वास' तथा नासिका छिद्रों द्वारा वायु के निकलने को 'प्रश्वास' पुकारा जाता है। हर जीव के जन्म से मृत्यु तक 'श्वास–प्रश्वास' की क्रिया अविरल चलती रहती है। एक समय दोनों नासिका छिद्रों से श्वास–प्रश्वास प्राय: समान रूप से नहीं चलती। कभी बायें तथा कभी दायें नासा पुट से श्वास–प्रश्वास चलता है। परंतु कभी–कभी एकाध घड़ी तक एक ही समय में दोनों नथुनों से श्वास–प्रश्वास चलने लगता है।

बाये नासाछिद्रों से चलने वाले श्वास को 'ईडा' तथा दाये नासा छिद्रों से चलने वाले श्वास को 'पिंगला' तथा दोनों नासाछिद्रों द्वारा समान चलने वाले श्वास को 'सुषुम्नाश्वास' कहते हैं। नासाछिद्रों से चार अंगुल नीचे हाथ रखकर महसूस किया जा सकता कि श्वास किस नासाछिद्र से प्रवाहित हो रहा है। अत: जिस तरफ से काम चल रहा हो, उसी तरफ का श्वास समझना चाहिए। अभ्यास से धीरे–धीरे इसका ज्ञान साधक को होने लगता है। हमारा श्वास प्रतिदिन सूर्योदय के समय ढाई–ढाई घड़ी के हिसाब से एक–एक नासिका से श्वास चला करता है। अत: दिन के चौबीस घंटों में बारह बार बायी तथा बारह बार दायी नासिका से

श्वास चलता है। श्वास क्रिया किस दिन किस तरफ की नासिका से शुरू होती है, उसका भी स्पष्ट प्राकृतिक नियम है। यथा–

आदौचन्द्रः सिते पक्षे भास्करस्तु सितेतरे।
प्रतिपत्तो दिनान्याहुस्त्रीणि त्रीणि क्रमोदये।।

(कल्याण, वर्ष 65)

अर्थात् शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा (प्रथम) तिथि से तीन–तीन दिन के क्रम से बांयी अर्थात् चन्द्र नाड़ी, नासिका से तथा कृष्णपक्ष की प्रतिपदा (प्रथम) तिथि से दांयी अर्थात् सूर्य नाड़ी, नासिका से पहले श्वास चलता है। अर्थात् शुक्लपक्ष की प्रतिदा, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा– इन नौ दिनो मे सूर्य निकलते समय प्रातःकाल, पहले बांयी नासिका से तथा चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी, द्वादशी – इन छः दिनों को प्रातः काल सूर्योदय के समय पहले दांयी नासिका से श्वास चलना आरंभ होता है तथा वह ढाई घड़ी तक (एक घंटा) रहता है। उसके बाद दूसरी नासिका से श्वास चलता है। कृष्णपक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावस्या– इन नौ दिनों मे प्रातःकाल सूर्योदय के समय, पहले दाहिनी नासिका से तथा चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी, द्वादशी– इन छः दिनों मे सूर्योदय के समय प्रातः काल मे बांयी नासिका से श्वास चलना आरंभ होता है और ढाई घड़ी (एक घंटा) के बाद दूसरी नासिका से चलने लगता है। अतः इस प्रकार नियमानुसार ढाई–ढाई घड़ी तक एक–एक नासिका से श्वास चलता रहता है। मनुष्य के जीवन में श्वास की गति का यही प्राकृतिक नियम है।

यहेत्तावद् घटीमध्ये पंचतत्वानि निर्दिशेत

प्रति एक–एक घंटे (ढाई घड़ी) के हिसाब के क्रम से एक–एक नासिका से श्वास चलने के समय क्रमशः पंचतत्वों का उदय होता है। अतः श्वास–प्रश्वास की गति ध्यान मे रखकर कार्य करने पर मनुष्य सुडौल व स्वस्थ बना रहता है तथा दीर्घ जीवन व्यतीत करता है जिसके फलस्वरूप सांसारिक कार्यों मे सफल रहने के कारण सुखपूर्वक जीवन यात्रा पूरी करता है।

वाम नासिका का श्वास फल

ईड़ा नाड़ी या चन्द्र नाड़ी अर्थात् बांयी नासिका से जब श्वास चल रहा हो, उस समय मनुष्य को स्थिर कर्म करने चाहिए। जैसे–अलंकारधारण, दूरयात्रा, आश्रम प्रवेश, मन्दिर तथा महल निर्माण तथा धन प्राप्त करना। सरोवर, कुआं, जलाशय तथा देवस्तंभ आदि की प्रतिष्ठा करना। यात्रा करना, दान देना, विवाह, नये कपड़े पहनना, शांति कर्म करना, दिव्य औषधियों का सेवन, प्रभुदर्शन, मित्रता करना, बाहर जाना आदि शुभ कर्म करने चाहिए।

बांयी नाक से श्वास चलते समय शुभ कार्य करने पर पूर्ण सफलता मिलती है। परंतु वायु, अग्नि और आकाश तत्व के उदय के समय उपरोक्त कार्य नहीं करने चाहिए।

दांयी नासिका का श्वासफल

पिंगला नाड़ी या सूर्य नाड़ी या गंगा नाड़ी अर्थात् दाहिनी नाक से जब श्वास चल रहा हो, उस समय मनुष्य को कठिन 'कर्म' करने चाहिए। जैसे–कठिन क्रूर विद्याध्ययन, अध्यापन, स्त्रीसंसर्ग, नौकाविहार, आरोहण, तान्त्रिक कर्म, उपासना, शत्रुदण्ड, शस्त्राभ्यास, गमन, पशु विक्रय, ईंट पत्थर, काठ तथा रत्न आदि तराशना, संगीताभ्यास, यंत्रतंत्र बनाना, किले–पहाड़ पर चढ़ना, हाथी, घोड़ा, रथ की सवारी करना, व्यायाम, औषधि सेवन, लेखन कार्य, क्रय–विक्रय, दान, युद्ध, भोग, राजदर्शन तथा स्नानाहार आदि।

सुषुम्न श्वास काफल

जब दोनों नासा छिद्रों से समान श्वास चल रहा हो तो कोई शुभ कार्य नहीं करना चाहिए तथा नहीं अशुभ कार्य करें क्योंकि उस समय किये गये कर्म का फल निष्फल हो जाता है। ऐसे समय में योगाभ्यास तथा ध्यान आदि के द्वारा भगवद् स्मरण करना ही उचित है। सुषुम्ना नाड़ी से श्वास चलने के समय किसी को अपशब्द, शाप अथवा वरदान भी सफल हो जाते है।

स्वर प्रवाह से रोगोत्पत्ति का पूर्ण ज्ञान तथा उसका प्रतिकार

यदि कभी प्रतिपदा आदि तिथियों का निश्चित नियम के विरूद्ध श्वास चले तो निश्चित समझिये कि कुछ अमंगल होने वाला है। जैसे–शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को सुबह नींद खुलने पर सूर्योदय काल, पहले यदि दाहिनी नाक से श्वास चलना आरम्भ हो तो उस दिन से पूर्णिमा तक के मध्य गर्मी के कारण कोई पीड़ा होगी और कृष्णपक्ष की प्रतिपदा तिथि को सूर्योदय के समय, पहले बांयी नाक से श्वास चलना आरम्भ हो तो उस दिन से अमावस्या तक के अन्दर कफ या सर्दी के कारण कोई पीड़ा होगी। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

दो पखवाड़ों तक अगर विपरीत ढंग से सूर्योदय के समय श्वास चलता रहे तो किसी आत्मीय स्वजन को भारी बीमारी होगी अथवा मृत्यु होगी या और किसी प्रकार की विपत्ति आयेगी तीन पखवाड़ों से अधिक गड़बड़ होने पर निश्चय ही अपनी मृत्यु हो जायेगी।

शुक्ल या कृष्णपक्ष की प्रतिपदा के प्रातःकाल में यदि इस प्रकार विपरीत ढंग से निःश्वास चलने का ज्ञान हो जाये तो उस नासिका छिद्र को कई दिनों तक बन्द रखने से रोग पैदा होने की संभावना नहीं रहती केवल स्नान तथा भोजन के समय बन्द न रखें।

परंतु असावधानी के कारण निःश्वास में गड़बड़ी से कोई रोग उत्पन्न हो जाये तो तब तक ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे शुक्ल पक्ष में दाहिनी तथा कृष्ण पक्ष में बांयी नासिका से श्वास न चले। इस तरह करने से रोग शीघ्र ही दूर हो जायेगा। अगर कोई भयंकर रोग होने

वाला होगा वह भी सूक्ष्म हो जायेगा तथा शीघ्र ही ठीक हो जायेगा ऐसा करने से न तो रोगी को कष्ट भोगना पड़ेगा और न उपचार कराने में धन खर्च करना पड़ेगा।

नासिका कैसे बन्द करें

थोड़ी सी रूई लेकर उसे अण्डाकार बना लें तथा किसी बारीक कपड़े से लपेट कर सुई से चारों तरफ से धागे के साथ सिलाई कर दें जिससे नासाछिद्रों में इस प्रकार फिट बैठ जाये ताकि नासिका से श्वास-प्रश्वास न निकल सके। जिन लोगों को मस्तिष्क, अथवा कोई सिर का रोग हो, उन्हें केवल कपड़े से नासिका छिद्र बन्द रखने चाहिए। जितने दिनों तक नासिका छिद्र बन्द रखें, तब तक कोई कठिन परिश्रम, धूम्रपान, जोर-जोर से बातचीत न करें और नहीं उस समय योगाभ्यास आदि करें। जब भी नाक बन्द रखने की आवश्यकता महसूस करें, उपर्युक्त सभी नियमों का पूर्णध्यान से पालन करें।

श्वास बदलने की विधि

अपनी इच्छा पूर्ति के लिए तथा समय की आवश्यकतावश कभी-कभी श्वास गति दूसरी तरफ करनी पड़ती है। मान लो हमें कोई कार्य दायीं नासिका की श्वास के समय करना है, परन्तु उस समय श्वास बायीं नासिका से चल रहा है, अतः कार्य पूर्ति हेतु हम यह इन्तजार नहीं कर सकते कि जब तक श्वास दायीं तरफ से चले। अतः श्वास किस तरफ से लेना है, यह भी सीखना आवश्यक है।

श्वास जिस तरफ की नासिका से चल रहा हो, उसके विपरीत तरफ की नासिका को अंगूठे से दबाना चाहिए तथा जिससे श्वास चलता हो, उसके द्वारा वायु खींचनी चाहिए। फिर जिधर से वायु खींची है, उसे दबा कर, दूसरी तरफ की नासिका से धीरे-धीरे निकालनी चाहिए। कुछ समय के अभ्यास से श्वास की गति बदल जायेगी।

जिस नासिका से श्वास चलता हो, उसी तरफ करवट लेकर लेटे रहें, तो श्वास विपरीत नासिका से चलने लगेगा। इसी प्रकार बार-बार करवट बदलने से भी श्वास की गति बदल जाती है तथा श्वास दूसरी नासिका से चलने लगता है। श्वास की गति बदलने में सक्षम होने पर प्राणी पवन विजयी बन सकता है।

स्वर बदलने से रोग निवारण

परम पिता परमात्मा ने जब मानव पिण्ड का निर्माण किया, उसने प्राणी के स्वस्थ रहने की कुंजी भी शरीर में रख दी, परन्तु मानव ने अज्ञानतावश उस पर ध्यान नहीं दिया इसी कारण वह रोगों से पीड़ित रहता है। अतः स्वर(श्वास) बदलने से होने वाले लाभों के बारे में हम चर्चा कर रहे है जिनमें निरोग होने के लिए औषधियों के सेवन की कोई आवश्यकता नहीं रहती।

1. **ज्वर (बुखार)**– जब ज्वर हो जाये अथवा ज्वर आने की आशंका हो, तब जिस

तरफ की नासिका से श्वास चल रहा हो, उस नासिका को जब तक बन्द रखिये तब तक ज्वर पूर्ण रूपेण उतर न जाये तथा उस समय में विपरीत नासिका से श्वास–प्रश्वास चलता रहे। इस प्रकार से ज्वर अतिशीघ्र चार या पांच दिनों में उतर जायेगा तथा रोगी बिना दवा के ठीक हो जायेगा। अगर ज्वर आने की शंका होगी तो ज्वर चढ़ेगा ही नहीं। सिन्दुवार की जड़, रोगी के हाथ में बांधने से भी ज्वर निश्चय दूर हो जाते हैं।

2. अंतरिया ज्वर– जब ज्वर बार–बार कुछ दिनों के अन्तर से आता है, उसे अंतरियाज्वर कह के बोलते हैं। अतः जिस दिन बुखार या ज्वर आने की बारी हो, श्वेत अपराजिता या पलास के पत्ते दोनों हाथों से मलकर उसकी पोटली बना कर कपड़े में लपेट लें तथा उस दिन बार–बार पोटली को सूंघते रहें। प्रायः देखा गया है कि अंतरिया ज्वर ठीक हो जाता है।

3. सिर दर्द– जब सिर भारी रहे या पीड़ा हो जाये तब दोनों हाथों की कुहनी के ऊपर धोती अथवा रस्सी के टुकड़े से कसकर बांध देना चाहिए। इस प्रकार पांच या सात मिनटों में सिरदर्द ठीक हो जायेगा। इतने जोर से कस कर बांधना चाहिए कि रोगी के हाथों में अत्यन्त दर्द महसूस होने लगे। दर्द में आराम आने पर बांहे खोल देनी चाहिए।

4. आधाशीशी या अधकपाली दर्द– कभी–कभी कपाल के मध्य से बायीं या दायीं तरफ आधे कपाल और मस्तिष्क में पीड़ा होती है, उसे आधाशीसी या अधकपाली के नाम से पुकारा जाता है। ऐसा दर्द सूर्य निकलते ही शुरु हो जाता है तथा ज्यों–ज्यों सूर्य चढ़ता जाता है, पीड़ा बढ़ती रहती है तथा दोपहर बाद सूर्य के उतरने पर कम होती जाती है। इस दर्द में भी दोनों हाथों में कुहनी से ऊपर कसकर बांध लगाने चाहिए इससे पीड़ा शीघ्र दूर हो जायेगी। अगर दूसरे दिन पुनः दर्द होने लगे तो देखें कि किस तरफ की नासिका से श्वास चल रहा है, उस नासिका को तुरन्त बन्द कर देना चाहिए साथ ही उस तरफ के हाथ में कुहनी से ऊपर जोर से बांध लगाने चाहिए। ऐसा करने से आश्चर्यजनक परिणाम मिलेंगे।

5. सिर पीड़ा या पीनस– जब रोगी लगातार सिर पीड़ा से परेशान रहता है, तब प्रातः सुबह उठते ही उसे दोनों नासिकाओं से शीतल (ताजा) जल पीना चाहिए। इससे मस्तिष्क शीतल होगा, सिरभारी नहीं होगा तथा सर्दी भी नहीं लगेगी।

6. अजीर्णादि–उदरविकार– याद रखें जब हम भोजन करने बैठें, उस समय दायीं नासिका से श्वास चलता हो। ऐसा करने से उदर विकार नहीं होंगे। प्रतिदिन ऐसा करने से खाना भी सुगमता से पच जाता है। विशेष बात ध्यान रखें कि भोजन के बाद में कुछ समय के लिए बायीं तरफ करवट लेकर आराम कर लें। समय के अभाव में लगभग 10–15 मिनटों तक उस समय बायीं तरफ नासिका बन्द रखें तथा दायीं तरफ की नासिका से श्वास–प्रश्वास करते रहें। कुछ भी न कर सकने की स्थिति में आप पांच मिनटों तक 'वज्रासन' में बैठें। ऐसा

करने से आप उदर विकारों तथा बदहजमी अजीर्णता इत्यादि से बचे रहेंगे तथा पाचन तंत्र भी शक्तिशाली हो जायेगा।

सुखासन में बैठकर नाभि मण्डल पर ध्यान केन्द्रित करने से एक सप्ताह के अन्तर्गत उदर विकार दूर हो जायेंगे।

7. प्लीहा–यकृत (तिल्ली–लिवर)– शैया त्याग के समय सुबह हाथ–पैरों को सिकोड़ कर छोड़ देना चाहिए। कभी सीधे, कभी आड़े सारे शरीर को फैलाना चाहिए तथा बार–बार सिकोड़ना चाहिए। प्रतिदिन 5–10 मिनट इस तरह करने से यकृत के रोग ठीक हो जायेंगे। निरंतर अभ्यास करने से प्राणी प्लीहा–यकृत रोग से कभी परेशान नहीं रहेगा।

8. दन्तरोग– जितनी मनुष्य मल या मूत्र या त्याग करे, उतनी ही बार अपने जबड़े का ऊपर तथा नीचे सख्ती के साथ दबाये रखे। मल–मूत्र त्यागने के बाद खोल दे। ऐसा प्रतिबार करने से मनुष्य दाढ़–दांत, मसूड़े मजबूत हो जायेंगे तथा उन्हें किसी प्रकार के दन्तरोग नहीं होंगे। दांत काफी आयु तक कार्य करते रहेंगे।

9. स्नायविक वेदना– शरीर में स्नायविक वेदना या अन्य कोई वेदना किसी भी तरह की हो, मालूम होते ही जिस नासिका से श्वास चल रहा हो, उसे तुरन्त बन्द कर दीजिए। दो–चार मिनटों में वेदना शान्त हो जायेगी।

10. श्वासरोग अथवा दमा– जब दमे या श्वास का दौरा पड़े उस समय जिस तरफ को नासिका से श्वास चल रहा हो, उसे तुरन्त बन्द करके, उसके विपरीत वाली नासिका से श्वास लेना शुरू कर दें। दस या पन्द्रह मिनटों में दमा का दौरा, कम हो जायेगा। इसी प्रकार प्रतिदिन अभ्यास करने से दमा तथा श्वास रोग ठीक हो जायेगा। जब भी दमे का दौरा पड़े, इसी क्रिया को बार–बार करें। दमा शांत हो जायेगा। दमे का रोग बड़ा भयंकर होता है। इसका दौरा कभी किसी समय भी पड़ जाया करता है। अतः सावधानी रखनी अति आवश्यक है। इस प्रकार दवा की कोई आवश्यकता नहीं है।

11. वातरोग– मनुष्य प्रायः वातरोगों से पीड़ित रहा करते हैं। भोजन करने के बाद सिर में कंघी करनी चाहिए। कंघी के दांते अच्छी प्रकार से सिर को लगें अथवा खुजलायें ताकि पूरी खोपड़ी में कंघी की रगड़ महसूस हो। यह क्रिया रोजाना भोजन करने में जितना समय लगे, लगभग उतने समय तक कंघी करनी चाहिए। उसके बाद वीरासन लगाकर अर्थात् दोनों पैर पीछे मोड़कर उनके ऊपर दबाकर लगभग पन्द्रह मिनट तक बैठना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन भोजनोपरान्त बैठने से पुराने से पुराना वात ठीक हो जाता है। अगर स्वस्थ मनुष्य प्रतिदिन अभ्यास करे तो वात रोग उसे छू भी नहीं पायेगा।

12. नेत्र रोग– रोजाना सुबह उठते ही मुँह में पानी भरें। मुँह में पानी भरे हुए, आँखों को लगभग 15 से 20 बार पानी से झपटी मार–मार कर धोना चाहिए। इसी प्रकार प्रतिदिन

भोजन के बाद आँखों को कम से कम सात बार पानी से धोनी चाहिए। जितनी बार मुँह में पानी भरें उतनी बार आँखें जरूर धोयें। नहाते समय पैर के अंगूठे के नाखूनों को तेल लगावें उसके बाद शरीर पर तेल की मालिश करें। इससे नेत्र ज्योति बढ़ जाती है।

●●●

शोक संवेदना

1. अत्यन्त दु:ख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि वेदाचार्य पं. महादेव जी शर्मा का छ:(6 नवम्बर) को दिल्ली में देहावसान हो गया है। वे उत्तर भारत के जाने माने वेद के विद्वानों में से एक थे। वे लगभग 90 (नब्बे) वर्ष के थे। 1974–75 से सन् 1990 तक वे श्री सिद्ध गुफा सवाई में यज्ञ के आचार्य के रूप में आते रहे हैं। आचार्य जी की गुरुदेव जी के प्रति अगाध श्रद्धा थी। उनके परिवार में उनके सुपुत्र पं. श्रीदेव शर्मा हैं जो दिल्ली में ही रहते हैं। इस दु:खद बेला पर सिद्ध गुफा सवाई के सभी आश्रम वासी तथा सिद्धयोग परिवार अपना हार्दिक संवेदना प्रगट करता है।

2. वाराणसी के श्री राम जी राय का सितम्बर माह में देहावसान हो गया है वे कुछ दिनों से रूग्ण चल रहे थे। वे गुरुदेव जी के दीक्षित बच्चों में से एक थे। वे बराबर आश्रम के उत्सवों पर श्री आत्मा प्रसाद सिंह के साथ आते रहते थे। उनकी आयु लगग 60–62 की थी। इस दु:ख के अवसर पर सिद्धयोग परिवार हार्दिक संवदेना प्रकट करता है। प्रभु जी उनके परिवारिजनों को इस दु:ख को सहन करने की शक्ति दें तथा अपने अभय चरणों में स्थान दें।

3. हमारे गुरुभाई आगरा निवासी महावीर सिंह चौहान का 22 अक्टूबर को देहवासान हो गया।

तथाआगरा निवासी श्री सौदान सिंह तोमर का 30 अक्टूबर को देहावसान हो गया। वे 70 वर्ष के थे। इन दोनों गुरुभाईयों की मृत्यु पर सिद्धयोग परिवार हार्दिक संवेदना प्रकट करता है। प्रभु इनकी आत्मा को शान्ति दें तथा दु:खी परिवारों को इस दु:ख को सहन करने की शक्ति दें।

श्री मद्भागवत् माहात्म्य

राजेश कुमार श्रीवास्तव

(पूर्व प्रकाशित से आगे)

अर्थात्– हे भारत वंशियो में श्रेष्ठ अर्जुन! उत्तम कर्म करने वाले अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी ऐसे चार प्रकार के भक्तजन मुझको भजते हैं।

भगवान ने अपने भक्तों में पहले भक्त अर्थार्थी बतलाये जो भोग पदार्थों की कामना से भगवान का भजन करते हैं। दूसरे भक्त आर्त हैं जो किसी घोर संकट, असाध्य रोग आदि से रक्षा के लिए भगवान को भजते हैं। उक्त दोनों प्रकार के भक्तों को सकाम भक्त कह सकते हैं, क्योंकि दोनों ही प्रकार की भक्ति का कारण सुख की कामना है। भगवान के इन भक्तों की प्रकृति रजोगुण प्रधान होती है। भोग सुख की तीव्र इच्छा से प्रेरित होकर भगवान की भक्ति के साथ–साथ संसार में सर्वाधिक शारीरिक श्रम करने वाले होते हैं। तीसरे जिज्ञासु भक्त हैं जो केवल मात्र भगवान की प्राप्ति की जिज्ञासा से भगवान का भजन करते हैं। इनकी सतोगुण प्रधान प्रकृति होती है। विषय भोगों में आसक्ति के कारण इनका काम–धन्धों में मन कम ही लगता है। अपना अधिकतम समय ये भजन पुरुषार्थ में ही लगाते हैं। इनकी निष्काम भक्ति होती है। यही वे भगवान के भक्त हैं जो ज्ञान–वैराग्य को आदर देने वाले होते हैं क्योंकि भक्ति सकाम हो सकती है किंतु ज्ञान–वैराग्य सकाम नहीं होते। यही कारण है कि सकाम भक्तों की ज्ञान–वैराग्य की प्राप्ति में रुचि नहीं होती, लेकिन ये ज्ञान–वैराग्य से सम्पन्न महात्माओं का आदर–सम्मान करने वाले होते हैं। तामसी लोग ज्ञान–वैराग्य का तिरस्कार करने वाले होते हैं। कलयुग में इनकी भरमार होती है। राजसी लोग तो इन तामसी व सतोगुणी लोगों से अपना सामंजस्य बनाकर चलते किंतु तामसी व सतोगुणी लोगों की चित्तवृत्तियों में पूर्ण विरोधाभास होता है। किसी परिस्थिति विशेष में जब ये परस्पर संपर्क में रहने के लिए विवश होते हैं तब इन दोनों के मध्य भारी द्वन्द उपस्थित होता है। द्वन्द सहन की क्षमता न होने से जिज्ञासु भक्तों में भक्ति, ज्ञान–वैराग्य के भावों की भारी हानि होती है। तब ये भक्ति, ज्ञान–वैराग्य से हीन होकर सच्चे साधुओं की खोज में भटकते रहते हैं और मानसिक क्लेश के कारण बड़े अशांत हो जाते हैं।

कलयुग में निकम्मे, आलसी, व्यसनी तमोगुण वृत्ति के दूषित कर्म करने वाले लोग पवित्र तीर्थों में अपने आश्रम स्थापित कर लेते हैं। तंत्र–मंत्र से, तामसी–राजसी शक्तियों को सिद्ध करके पाखण्ड द्वारा भोले लोगों को अपने चंगुल में बांध लेते हैं। राजसी सकाम भक्तों में धन कमाने की अच्छी योग्यता होती है। धन बढ़ाने के लोभ से ये खूब दान–पुण्य करते हैं।

दान वृत्ति का लाभ उठाकर पाखण्डी लोग इन्हें मनोकामना पूर्ण करने का विश्वास देकर अपना शिकार बना लेते हैं और इनसे खूब धन लूटते हैं। सत्व प्रधान ज्ञान प्राप्ति के लालच में इनके चक्कर में पड़ जाते हैं। उनके पास धन तो होता नहीं उनसे ये पाखण्डी लोग कठोर सेवाएँ लेते हैं। अनेक प्रकार के दु ख देते हैं। सच्चाई जान कर ये लोग अति अपमानित होकर स्वयं ही ऐसे दूषित क्षेत्रों को छोड़ कर भाग जाते हैं।

यदि उक्त तीसरे प्रकार सतोगुणी जिज्ञासु भक्तों को प्रभु कृपा से श्रेष्ठ महात्मा और श्रेष्ठ स्थान प्राप्त हो जाये तो यही जिज्ञासु भगवान के भक्त ईश्वर में प्रेमपूर्ण भक्ति होने के कारण योगाभ्यास में आरूढ़ होकर विवेकख्याति, ऋतम्भरा प्रज्ञा को प्राप्त करते हुए ज्ञान साधना (योग साधना) की पराकाष्ठा तत्वज्ञान तक पहुँच जाते हैं। यही भगवान के चौथे ज्ञानी भक्त हैं। तत्व ज्ञान से योगाभ्यासी अपने अज्ञान को समूल नष्ट कर देता है और उसका वह ज्ञान सूर्य के सदृश उस सच्चिदानन्दघन परमात्मा को प्रकाशित कर देता है। नारद जी ऐसे महात्माओं की ही तलाश में तीर्थों में भ्रमण करते रहे। भगवान को अपने चारों प्रकार के भक्तों में ज्ञानी भक्त अत्यन्त प्रिय हैं। अपने ज्ञानी भक्तों के स्वरूप को समझाते हुए भगवान कहते हैं–

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।
शीतोष्ण सुखदुःखेषु तथा मानपमानयोः।।

अर्थात्– अर्जुन! सर्दी–गर्मी, सुख–दुखादि में तथा मान–अपमान जिनके अन्तःकरण की वृत्तियाँ भली–भाँति शान्त ऐसे स्वाधीन आत्मा वाले पुरुष के ज्ञान में सच्चिदानन्दघन परमात्मा सम्यक प्रकार से स्थित हैं अर्थात् उसके ज्ञान में परमात्मा के ज्ञान के सिवा अन्य कुछ भी नहीं है।

तत्वज्ञानी महात्माओं के विषय में भगवान कहते हैं–

स महात्मा सुदुर्लभः।

–'ऐसा महात्मा दुर्लभ है।' ऐसे महात्मा ईश्वर की कृपा के बिना नहीं मिलते।

भगवान कहते हैं–

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

– 'इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसंदेह कुछ भी नहीं है।' परमात्मा परम् पवित्र है। ज्ञान प्राप्ति की साधना परमात्मा को प्राप्त करने की साधना है। ज्ञान की साधना को ही योगाभ्यास कहते हैं। ज्ञान प्राप्ति के लिए साधना के विषय में भगवान कहते हैं–

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।

अर्थात्– जितेन्द्रिय, साधनपरायण मनुष्य को ज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञान प्राप्ति की

साधना में श्रद्धा, तत्परता व जितेन्द्रियता इन तीनों की उपस्थिति आवश्यक है। 'परमात्म चिंतन' ज्ञान प्राप्ति की साधना है 'श्रद्धा' भगवान की प्रेम पूर्ण भक्ति है। 'परमात्म ज्ञान' ही 'ज्ञान' है जो साधना का लक्ष्य है। लम्बे समय तक नियमित साधना परायण बने रहना यह साधक की 'तत्परता' है। 'वैराग्य' का आशय इन्द्रिय निग्रह से है।

भगवान की प्रेमपूर्ण भक्ति करने वाले श्रद्धावान मनुष्य की बुद्धि यदि विषयी वातावरण से सुरक्षित रह सके तो स्वाभाविक ही परमात्म चिंतन करने वाली होती है। लगातार लम्बे समय तक जब बुद्धि परमात्म चिंतन में समाहित होती है तब धीरे-धीरे बुद्धि में 'ज्ञान' अर्थात् परमात्म ज्ञान उत्पन्न होने लगता है। बुद्धि जितना अधिक परमात्म चिंतन में समाहित होती है उतनी ही मात्रा में उसमें विषयी चिंतन का अभाव होने से हृदय में अनासक्ति की भावना दृढ़ होती है। विषयों के प्रति अनासक्ति की भावना इन्द्रिय निग्रह को व्यक्त करती है यही वैराग्य है। साधना करते-करते वैराग्य जब अपनी उत्कृष्ट अवस्था में पहुँचता है तब साधक जितेन्द्रिय कहलाता है। इस प्रकार प्राप्त ज्ञान अपनी उच्च भूमिकाओं को प्राप्त करता हुआ पूर्णत्व को प्राप्त होता है।

स्पष्ट है ज्ञान की प्राप्ति में इन्द्रिय निग्रह की महत्वपूर्ण भूमिका है। कलयुग के वातावरण में इन्द्रियां अत्यधिक विषयगामी रहती हैं। यह वातावरण मन की एकाग्रता के अनुकूल नहीं होता।

प्रत्येक महात्मा ज्ञान का उपदेश करने का अधिकारी नहीं होता। परमात्मा को तत्व से जानने वाले तत्वज्ञानी महापुरुष ही इस ज्ञान के उपदेशक होते हैं।

योगेश्वर श्रीकृष्ण गीता में अर्जुन को आज्ञा देते हैं-

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्व दर्शिनः।।

हे परंतप अर्जुन! उस ज्ञान को तू तत्वदर्शी ज्ञानियों के पास जाकर समझ, उनको भलीभांति दण्डवत-प्रणाम करने से, उनकी सेवा करने से और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करने से वे परमात्मतत्व को भलीभांति जानने वाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्व ज्ञान का उपदेश करेंगे।

आकाशवाणी सुन कर नारद जी सोच विचार करने लगे कि भक्ति, ज्ञान, वैराग्य को कलयुग के दूषित वातावरण में मानव के हृदय में जगाने के लिए कौन से साधु-महात्मा होंगे जो पुण्य कार्य करने का उपदेश करेंगे। ये महात्मा कहाँ मिलेंगे? गोविन्द जी की प्रेरणा से उनके मन में तप करने का विचार आया। पहले ही नारद जी साधु-महात्माओं की तलाश तीर्थ स्थानों में कर चुके थे। अतः अब उन्होंने महात्माओं को ढूंढना व्यर्थ ही समझा। नारद जी ने भक्ति को उसके पुत्र ज्ञान-वैराग्य के कष्ट निवारणार्थ उपाय खोजने का वचन दिया और तुरन्त वहाँ से चल दिये।

नारद जी जानते हैं कि आकाशवाणी द्वारा बताये गये ये महात्मा सामान्य तो हो नहीं सकते अवश्य ही तत्वदर्शी ज्ञानी महात्मा होंगे। इन्द्रियों को अत्याधिक चंचल बनाने वाले घोर दूषित वातावरण में भी जिज्ञासु भक्तों को कौन सा साधन उपयुक्त होगा यह तत्वदर्शीज्ञानी बता सकते हैं। वे साधक की प्रकृति, पुण्य संचय, परिस्थिति, देश (स्थान) व काल (वातावरण) पर विचार करके यह जान लेते हैं कि वह किस साधना का अधिकारी है। इस प्रकार साधक को उसके अनुकूल साधना का ही उपदेश करते हैं। यदि साधक में पुण्य बल की कमी होती है तो वे उसे ज्ञान का उपदेश देने से पहले पुण्यवृद्धि के साधन करा कर उसे ज्ञान प्राप्ति का अधिकारी बनाते हैं। यह अधिकार भेद की योग्यता प्रत्येक महात्मा में नहीं होती।

नारद जी ने बदरिकाश्रम में घोर तप किया। तप के फलस्वरूप उन्हें वहाँ सनकादि मुनिश्वरों का दर्शन हुआ। नारद जी ने उन्हें दण्डवत प्रणाम किया। उनका आदर सत्कार किया तत्पश्चात् कलयुग के मनुष्यों की कल्याणार्थ प्रश्न करने लगे।

नारद जी बोले–

हे पवित्र महात्माओं! आपके दर्शन बड़े भाग्य से प्राप्त होते हैं। आप लोग योगी और बड़े दूरदर्शी हैं। घोर दूषित वातावरण के कारण कलयुग के मनुष्यों में भक्ति, ज्ञान–वैराग्य के प्रति अरुचि पैदा हो रही है। कलयुगी दुष्टों से प्राप्त मानसिक क्लेशों के कष्टों से मुक्त करके उन्हें कल्याण मार्ग पर लाने वाले उस साधन का उपदेश करने की कृपा करें जिसे मैंने आकाशवाणी के द्वारा सुना है।

–हे नारद! द्रव्ययज्ञ, तप, योग, स्वाध्याय और ज्ञान यज्ञ आदि सभी कर्म श्रम साध्य, अस्थिर और स्वर्ग प्रदान करने वाले हैं। शुकदेव जी के द्वारा व्याख्यात श्रीमद्‌भागवत कथा रूप ज्ञान यज्ञ करने से ज्ञान–वैराग्य स्वस्थ होकर संकट से छुटकारा पा जायेंगे।

–हे ऋषिवर कुमारों! वेद, वेदान्त, गीता आदि सुन कर जब भक्ति, ज्ञान–वैराग्य नहीं जागे, तब श्रीमद्‌भागवत की कथा से वे कैसे जागेंगे?

–हे विरक्त चूड़ामणि नारद जी! गीता के वक्ता व्यासदेव जब दु:खी होकर अज्ञान के समुद्र में डूब रहे थे तब आपने उन्हें चतु: श्लोकी भागवत का उपदेश किया था जिसे सुनते ही उनकी सारी चिन्ता मिट गई थी। भागवत के महात्म्य के सम्बन्ध में आप सन्देह न करें। श्रीमद्‌भागवत की कथा को सुनने–सुनाने से शोक और दु:ख नष्ट हो जाते हैं।

–हे महात्माओं! श्रीमद्‌भागवत की ऐसी श्रेष्ठ महिमा सुन कर मैं मानव हित में श्रीमद्‌भागवत ज्ञान यज्ञ करना चाहता हूँ। इसके लिए कोई ऐसा पवित्र स्थान बतलाने की कृपा करें जहाँ मन स्वभाविक ही एकाग्र होता हो वह कलयुग के दूषित वातावरण से प्रभावित न हो। मैं आप की शरण में आ गया हूँ। आप हमें उस पवित्र स्थान पर श्रीमद्‌भागवत की कथा इसके महात्म्य व सुनने की विधि सहित सुनाने की कृपा करें।

(क्रमश:)

आत्मा का स्वरूप

डा. जे.एन. राय, आजमगढ़

पिछले श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण ने आत्मा और शरीर के सम्बन्ध को समझाते हुए कहा कि जैसे मनुष्य जीर्ण वस्त्रों को त्याग कर नये वस्त्र पहन लेता है, उसी प्रकार यह देही आत्मा पुराने शरीरों को छोड़ नये शरीर ग्रहण करता है। अब प्रस्तुत श्लोकों में आत्मा के स्वरूप का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण भगवान बतलाते हैं कि आत्मा क्यों नहीं बदलती?

नैनं छिन्दति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।2–23
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।।2–24
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि।।2–25

अर्जुन देह–बोध से पीड़ित था। गुरुजनों और सम्बन्धियों के शरीरों के प्रति आसक्ति के कारण उसका विवेक दब गया था। वह धैर्य खो बैठा था। जब धैर्य समाप्त होता है तो साहस भी साथ छोड़कर चला जाता है। साहसहीन व्यक्ति के लिये एक छोटा सा गड्ढा भी सागर के समान दुस्तर हो जाता है। हताशा मन को घेर लेती है। ऐसे विकट समय में यदि हम मन को किसी प्रकार समझा सकें, तभी हम टूटने से बच सकते हैं। ऐसे ही समय सत्संग की आवश्यकता होती है; एक ऐसे व्यक्ति के साथ का प्रयोजन होता है, जो हमें समझाकर साहस प्रदान कर सके और हमारे बिखरते हुए मन को थाम सके। जीवन में विपत्तियाँ तो आती हैं, पर यदि हमारा आत्मविश्वास अनुपात में प्रबल हुआ तो बड़ी से बड़ी विपत्ति भी हँसते खेलते पार कर ली जाती है।

अर्जुन ऐसी ही परिस्थिति से घिर गया था, वह देहासक्ति के बन्धन में बुरी तरह जकड़ गया था। इसीलिए श्रीकृष्ण भगवान सबसे पहले उसे ज्ञान का उपदेश देते हैं, देह की अनित्यता का बोध कराते हुए उसके समक्ष आत्मा के स्वरूप का उद्घाटन करते हैं और तर्क के बल पर उसके विवेक को जगाने और प्रतिष्ठित करने का प्रयास करते हैं। वे कहते हैं– अर्जुन! तू देह नहीं, तू आत्मा है। कटने, जलने, भीगने और सूखने वाला तो शरीर है, आत्मा नहीं। पंचभूतों यानी आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी द्वारा आत्मा का विनाश सम्भव नहीं है। आकाश सर्वव्यापी होने के कारण निःस्तब्ध है। वह उदासीन बना रहता है। शेष चारों भूत अपना–अपना कार्य करते हैं। आत्मा पर पंचभूतों की कोई छाया तक नहीं लग पाती।

क्यों? इसलिए कि आत्मा 'अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है। आत्मा में तो कोई अवयव नहीं, वह अव्यय है जैसा कि गीता के दूसरे अध्याय के 21 वें श्लोक में कहा गया है।

21 वें श्लोक में आत्मा के लिए 'अविनाशी, नित्य और अव्यय, विशेषण का प्रयोग हुआ है, तब फिर से उसे 'अच्छेद्य, अदाह्य, नित्य और सनातन आदि विशेषणों से युक्त करने का क्या मतलब? क्या यह पुनरुक्ति नहीं है? आचार्य शंकर गीता पर अपने इस 24वें श्लोक भाष्य में इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं – 'न एतेषा श्लोकाना पौनरुक्त्य चोदनीयम्' इन श्लोकों में पुनरुक्ति के दोष का आरोप नहीं करना चाहिए। भला ऐसा क्यों? आत्मतत्त्व बड़ा दुर्बोध है, सहज ही समझ में आने वाला नहीं है। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण यह सोचकर कि किसी भी तरह वह अव्यक्त तत्त्व इन संसारी पुरुषों के बुद्धिगोचर होकर संसार के निवृत्ति का कारण बन जाये, बार–बार, प्रसंग उठाकर भिन्न–भिन्न शब्दों से उसी तत्त्व का निरूपण करते हैं।

श्रीकृष्ण भगवान ने अर्जुन को युक्तियुक्त ज्ञान देकर उसकी बुद्धि में आत्मा के स्वरूप को दृढ़ रूप से अंकित कर देते हैं। ताकि वह देहासक्ति से उत्पन्न शोक को दूर कर सके। श्रीकृष्ण भगवान अर्जुन से कहते हैं – 'आत्मा को इस प्रकार जान कर तुम्हें शोक करना उचित नहीं। आत्मज्ञान ही शोक और मोह को दूर करने का एकमात्र रसायन है।'

●●●

संसार की आध्यात्मिक अनुभूतियाँ एक अद्भुत ग्रंथ हैं। वेद, पुराण, गीता, बाइबिल इत्यादि सब इसी ग्रंथ के कुछ पन्ने हैं। हमें अतीत की बातों को ग्रहण करना होगा, वर्तमान की ज्ञान ज्योति का उपयोग करना होगा और भविष्य में होने वाली ज्ञानवर्द्धक बातों को ग्रहण करने के लिए अपने हृदय द्वारों को सदैव खुला रखना होगा।

–स्वामी विवेकानन्द

वरेण्य-जीवन

सुखवीर आर्य

कोई भी कर्म सबके लिये समान रूप से करणीय नहीं होता। अपने विकास की स्थिति में सब भिन्न हैं। वे पृथक स्तरों पर निवास करते हैं। विकास के प्रारंभिक रूप में इच्छा अनिवार्य है। अतः इच्छाओं का त्याग एक आध्यात्मिक नियम के रूप में सबके लिये अनिवार्य शर्त नहीं होनी चाहिए। अवश्य आध्यात्मिक जीवन की मांग है कि मनुष्य के अंदर इच्छाएं न रहें। अहंकार के साथ इच्छाओं का त्याग शास्त्रोक्त वचन है। लेकिन, यह शर्त उनके लिए होनी चाहिए, जिनका आत्म-विकास उस स्तर पर पहुँच गया है जहाँ सब प्रभु को समर्पित है। उनके संकल्प की अभिव्यक्ति है। व्यक्तिगत जीवन जैसी चीज ही नहीं है। जहाँ अभीप्सा का रूप इतना तीव्र है कि आत्म उपलब्धि के बिना, जीवन रखना असंभव हो जाये। आत्मा की दूरी कचोटने लगे, पर्दा दूभर हो गया है, मिलन ही जिनका जीवन बन गया है, जो बिना मिले रह न पायें, जो उनका होकर, उनके लिये, उनके अंदर ही जीना चाहते हैं, अन्यथा नहीं। उनको समर्पित होकर, उनके आदेश के पालन के रूप में ही कुछ करना चाहेंगे अन्यथा नहीं। जिनकी भूख, नींद, जिनका विश्राम, भोजन प्रभु हो गये हैं, उनके लिये यह स्वाभाविक हो जाता है कि प्रभु-प्राप्ति को छोड़कर अन्य कोई इच्छा न रहे, उनमें उठ ही नहीं सकती। उठे भी कैसे, कहाँ उठे? व्यक्ति और व्यक्तित्व दोनों ही तो समर्पित हो चुके हैं। उनके हृदय में केवल प्रभु का निवास है। प्रभु ही प्राण है। प्रभु ही जीवन। प्रभु ही चेतना। प्रभु ही चिंतन। वे ही जीवन-स्वामी। उनके संकल्प की चरितार्थता और जीवन आधार।

भागवत जीवन में किसी भी वस्तु का त्याग नहीं है। त्याग की आवश्यकता वहाँ होती है जहाँ जीवन का स्तर निम्न होता है। अज्ञान और अंधकार की शक्तियों की छाया में चलता है। जहाँ अहंकार प्रेरक हो इंद्रियां ही प्रमुख हों, विषय-भोग-वासना को छूट हो, कोई संयम, कोई नियम न हो। एक विवेकहीन, दृष्टिहीन जीवन जिसमें आवेगों की बाढ़ सी आयी रहती हो, बिना पतवार की नौका के समान लक्ष्यहीन इधर-उधर भटकने वाला हो। अगर हम विवेकरूपी छलनी लेकर बैठें और ऐसे जीवन को छानने का प्रयास करें तो शायद ही सार के कुछ कण हाथ लगें। बड़ा भाग सब सारहीन, पूर्णतः निरर्थक होगा।

उच्च जीवन जिसके कण-कण में कोने-कोने में आत्मा की दिव्यता झलकती है, एक परम पवित्र, अर्चना है। वह दिव्य-कर्मी का दिव्य-कर्म है। वहाँ दिव्यता को छोड़कर उससे बाहर कुछ नहीं। सब कुछ सब भांति वरेण्य है।

●●●

साधना का सामान्य क्रम

“विषयासक्ति वाली निम्न प्रकृति और उसे अपने मार्ग में पड़ने वाली बाधाओं के सोच में ही रहना भूल है। इस प्रकृति और उसकी इन बाधाओं का विस्तार साधना का अभावपक्ष है। इन बाधाओं को देखना, समझना और हटाना अवश्य ही एक काम है; पर इस को सब कुछ समझकर इसी में सर्वात्मना सदा लगे रहना ठीक नहीं। साधना का जो भाव पक्ष है, अर्थात् परा शक्ति के अवतरण का अनुभव–वही मुख्य बात है। यदि कोई यह प्रतीक्षा करता रहे कि पहले निम्न प्रकृति सदा के लिए सर्वथा शुद्ध हो ले, तब परा शक्ति के आने की बाट जोही जाये, तो ऐसी प्रतीक्षा तो सदा करते ही रहना पड़ेगा। यह सच है कि निम्न प्रकृति जितनी ही शुद्ध होगी, उतना ही परा प्रकृति का उतर आना आसान होगा; पर यह भी सच है, बल्कि उससे भी अधिक सच है कि परा प्रकृति का उतरना जितना होगा उतनी ही निम्न प्रकृति निर्मल होगी। पूर्ण शुद्धि या स्थिर रूप से पूर्ण अवतरण एक बारगी ही नहीं हो सकता, यह दीर्घकाल में निरन्तर धैर्यपूर्वक क्रमशः ही होने का काम है। चित्त की शुद्धि और भगवच्छक्त्यवतरण दोनों का काम एक साथ चलता है और दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक स्थिरता और दृढ़ता के साथ दोनों एक दूसरे को आलिंगन करते हैं–साधना का यह सामान्य क्रम है।”

–योगीराज महर्षि अरविन्द

SIDDHYOG Postal Regd. No. Ag. 19/06-08 DECEMBER 2008

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक आध्यात्मिक एवं हिन्दी मासिक

श्री सिद्धयोग योग प्रशिक्षण केन्द्र

सैय्याँ (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ——————

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना

विभिन्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक [illegible] पर [illegible] का विज्ञापन
2. [illegible] का आयोजन [illegible]
3. [illegible] का आयोजन [illegible] रु. 1000 प्रति [illegible] रु. 100.00 प्रति [illegible]
4. [illegible] विज्ञापन दर रु. [illegible] प्रति [illegible] प्रति माह
5. [illegible] विज्ञापन दर रु. 100 प्रति [illegible]
6. [illegible] विज्ञापन दर रु० 100/- प्रति [illegible] 400/-
7. [illegible] विज्ञापन दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। [illegible] 25 पैसे मात्र।

संस्थापक:- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दामोदर लाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग प्रेस, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैय्याँ (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक :आचार्य ब्र. (डॉ.) दामोदर लाल शर्मा